अन्तिम गीत

(शेषेर कविता)

लेखक :

रवीन्द्रनाथ ठाकुर

प्रभात प्रकाशन

प्रकाशक :
प्रभात प्रकाशन,
मथुरा।

★

१६५७ ई०

★

★

अनुवादक :
विपिन बिहारी

★

मूल्य :
दो रुपया

★

मुद्रक :
सुभाष प्रिंटिंग प्रेस,
तिलक द्वार,
मथुरा।

अन्तिम गीत

अन्तिम गीत

१.

अमित

श्री अमितराय बैरिस्टर होकर स्वदेश लौटे। विदेशी सभ्यता ने उनके हृदय पर अधिकार प्राप्त कर लिया था। विदेशी मित्रों के नाम की देखा देखी उन्होंने भी अपने नाम को उन्हीं के अनुकूल बनाने की चेष्टा की। तनिक सा शब्दों में हेर फेर करना आवश्यक होगा। 'श्री' की इति हो गयी। 'राय' शब्द के अक्षर विन्यास को उन्होंने इस भाँति बदला कि स्पष्ट ही 'राय' को 'रे' पढ़ा जाने लगा। इस हेर फेर के कारण उनके विदेशी मित्र उनको---'अमिट राए' कह कर पुकारने लगे।

अमित के पिता भी बैरिस्टर थे। उन्होंने धन और यश दोनों प्राप्त किये थे। उनकी विद्वत्ता की उस समय धाक थी। उनके द्वारा संचित धन इतना यथेष्ट था कि उनकी तीन पीढ़ी बिना कोई कारबार किये आराम से बैठी जीवन-यापन कर सकती थीं। पिता के संचित धन को पाकर भी अमित अधःपतन की ओर नहीं गया। वह बाल बाल बच निकला।

कलकत्ता विश्वविद्यालय से एफ. ए. पास करके ही अमित आक्सफोर्ड में भरती हो गया। उसने वहाँ बी. ए. पास किया और बैरिस्टरी पास करते २ सात साल का समय बिता दिया। वह कुशाग्र था। उसने विद्याध्ययन में अधिक रुचि नहीं ली। प्रारम्भ ही से उसके पिता को उसका भविष्य असाधारण प्रतीत नहीं होता था। उनकी तो एकमात्र इच्छा यही थी कि उनका इकलौता पुत्र

आक्सफोर्ड की सभ्यता में इतना पक्का रंग जाये कि स्वदेश लौटने पर उसके बदल जाने की कोई आशंका ही न रहे।

जहाँ तक मेरा प्रश्न है, मैं अमित से प्रभावित हूँ। वह मुझे पसन्द है। भला युवक है। मैं लेखक हूँ। नया २ इस क्षेत्र में आया हूँ और इसीलिये मेरे पाठकों की संख्या भी कम ही है। अमित मेरी रचनाओं को पढ़ता है और मेरी सूझ बूझ से सहमत है। उसका कथन है कि "हमारे देश के यशस्वी साहित्य-कारों के पास 'स्टाइल' अर्थात शैली का नितान्त अभाव है। संसार में जिस प्रकार ऊंट अपने बेढंगी शरीर सज्जा को लेकर जीवित है उसी प्रकार हमारे साहित्यकार भी ढीली ढाली, बेढंगी शैली को लिये साहित्य निर्माण करने में मग्न हैं। बंगला साहित्य ने अभी नवीन शैली का रसपान नहीं किया है अतः उसके अभाव में इस डगमगाती हुई शैली का ही अच्छा खासा बोलबाला है।" अपनी स्थिति स्पष्ट करने के लिये मैं पुनः पाठकों को बता देना चाहता हूँ कि यह अमित का मत है, मेरा नहीं।

अमित का कथन है—"फैशन, चहरा है (कागज और मिट्टी के समिश्रण से बने हुये विविध प्रकार के चहरों का प्रयोग नाटक, रामलीला आदि में किया जाता है) और 'स्टाइल' अथवा शैली मुख श्री है। जो साहित्यिक क्षेत्र में प्रतिष्ठा प्राप्त कर चुके हैं तथा अपना महत्वपूर्ण स्थान बनाने में सफल हो सके हैं, शैली उनकी कृपा पर ही निर्भर है। जिनको साहित्य में यथेष्ट स्थान नहीं मिल सका है और वह अपने नव निर्माण पथ पर अग्रसर होने की आकांक्षा रखते हैं वह फैशन का आश्रय लेकर ही सन्तुष्ट हो जाते हैं। बंकिम बाबू की शैली 'विषवृक्ष' में स्पष्ट है। जैसी भी है किन्तु उन्होंने बड़ी कुशलता से उसका प्रतिपादन किया है। नसीराम ने 'मनोमोहन के मोहनबगान' में बंकिम फैशन को अपनाने की चेष्टा की। उसका फल जो निकला वह स्पष्ट ही है। अपनी पुस्तक को तो मटियामेट कर ही डाला साथ ही बंकिमचन्द्र की शैली की भी वह मिट्टी पलीत की जो कहते नहीं बनती। 'बारोयारी' (मित्र मण्डली का एक बंगाली उत्सव) के मौके पर पण्डाल के नीचे पेशेवर नाचने गाने वाली वेश्याओं के मुख देखने को मिलते ही हैं। उनके हाव भाव, कटाक्ष विभिन्न मुद्रायें लिये होते हैं। किन्तु फिर भी उनके मन को शान्ति नहीं मिलती। विवाह के शुभ अवसर पर

नव वधू के मुखश्री की एक झलक पाने के लिये हृदय बिकल रहता है। बनारसी दुपट्टे की ओट से जब वधू के मुखचन्द्र की एक भी झलक दीख जाती है तब हृदय की साध पूर्ण होती है। इस भाँति तम्बू कनात में नाचने वालियों के मुख की झलक तो फैशन की वस्तु रही और बनारसी घूँघट की ओट हुई स्टाइल की वस्तु।"

अमित कहता है—"हम लोग लकीर के फकीर हैं। जिस रास्ते हम से आगे जाने वाले चले जा रहे हैं हम भी उसी मार्ग का अनुसरण करते हैं। हम में साहस ही नहीं कि हम उस पगडंडी को छोड़कर दूसरा उचित मार्ग ढूँढ़ सकें। शायद हमारी भीरुता ही हमारे मार्ग में बाधक है। और इसी कारण हमारा ध्यान कभी स्टाइल अर्थात शैली के सुधार पर नहीं जाता। पुराणों में वर्णित दक्ष यज्ञ की कथा इस कथन की यथेष्ट पुष्टि भी करती है। इन्द्र, चन्द्र, वरुण आदि देवगण स्वर्ग के शायद सबसे अधिक फैशन वाले देवता हैं और शायद इसी कारण यज्ञों में उन्हें यथेष्ट मान भी मिल जाता है। भगवान शिव का अपना निजी स्टाइल है। उनका स्टाइल इन सबसे इतना विपरीत है कि उसके कारण ही शायद यज्ञ का कोई भाग उन्हें नहीं दिया जाता।"

आक्सफोर्ड से बी. ए. पास अमित के मुँह से यह मीमांसा सुनकर मुझे प्रसन्नता होती है। इसका एकमात्र कारण यह भी है कि मैं अपने लेखों में अपने निजी स्टाइल का अनुभव करता हूँ। सम्भव है इसी कारण मेरी कृतियां पहले ही संस्करण में मोक्ष प्राप्त करके पुनरावृत्ति का नाम भी नहीं लेतीं।

मेरे साले नवकृष्ण ने अंग्रेजी साहित्य में एम. ए, किया है। वह अमित की बातों से किंचित भी सहमत नहीं। अनेकों बार उसने अमित को टोका भी है और सदैव यह कह कर ही उपेक्षा प्रदर्शित की है—"रहने दो अपनी आक्सफोर्ड की धाक।" अनेकों बार नवकृष्ण ने मुझे भी समझाते हुये कहा है—"अमित, की अपनी एक समझ है। वह छोटों को बड़ा बनाकर बड़ों के प्रति उदासीनता के भाव दिखाने से ही सन्तुष्ट हो जाता है। अवज्ञा का ढोल पीटने में उसे आनन्द आता है और इसीलिये उसने तुम्हें उस ढोल का दंडा बनाया है।"

नवकृष्ण ने जब यह बात मुझे समझाने की चेष्टा की थी उस समय उसकी सहोदरा अर्थात् मेरी स्त्री भी उस स्थान पर मौजूद थी। उसे अपने भाई

की बात सुनकर अच्छा नहीं लगा। वह अमित की राय से प्रभावित थी। यद्यपि उसने अधिक विद्या प्राप्त नहीं की थी, किन्तु फिर भी उसकी बुद्धि आश्चर्यजनक थी। उसे अपने भाई की बात से असन्तुष्ट देख मुझे चैन ही मिला। मैं अमित की राय के विपरीत कुछ भी सुनने को तैयार नहीं था। यह ऐसी दशा में स्वाभाविक ही था।

अमित की बातों को सुनकर मैं सिहर उठता। वह बिना आगा-पीछा सोचे विख्यात अंग्रेजी लेखकों तक की कटु आलोचनायें करता और उन्हें बेकार सिद्ध करने की चेष्टा करता। वह सहज स्वभाव में कहता—"उन अंग्रेज लेखकों को मैं भली प्रकार पहचानता हूँ। यद्यपि उन्होंने अपने यश के जाल में मूर्खों को बुरी तरह जकड़ रखा है, किन्तु हैं वे पूर्ण थोथे। उनकी पुस्तकें व्यापारिक दृष्टि से सफल हो सकती हैं किन्तु साहित्य की दृष्टि से वे महत्वपूर्ण नहीं। उनकी धाक इतनी जमी हुई है कि जन-साधारण पुस्तक पर उनका नाम देखकर उसका यशोगान करने लगता है। उनका नाम साख पा चुके हैं और उस साख के सहारे वे आँख बन्द कर अर्थ-हीन साहित्य देकर भी धन संचय करने में जुटे हुये हैं।"

अमित स्वयम् भी उनकी रचनाएँ पढ़कर इस प्रकार की आलोचनायें नहीं करता है। बिना देखे, पढ़े ही इतने बड़े शब्दों में अपने मनोभावों को प्रगट करने में उसकी छाती तनिक भी नहीं दहलती है। आँख मींचकर उनकी निन्दा करने में उसे कभी किसी तरह की झिझक नहीं होती। उसकी दृष्टि में जो भी नामी लेखक हैं वह उसके अपने हैं। उसने ही स्वयम् उन्हें बड़ा मान रखा है और यदा-कदा उनकी प्रशंसा करके उन्हें बड़ा मनवाने की चेष्टायें भी कर चुका है। वे उसकी अपनी खोज हैं और उन पर उसका उसी प्रकार का दखल है जैसे स्पेशल ट्रेन के सैलून कमरे को रिजर्व करा कर प्राप्त किया जाता है।

अमित को जिस बात का नशा है, वह है स्टाइल। स्टाइल की उसके जीवन के हर पहलू पर गहरी छाप लगी हुई है। साहित्य ही में नहीं वरन् वह अपने वेश-भूषा और व्यवहारिक ढङ्गों में भी स्टाइल का प्रतिपादन करता है। उसके सोचने, विचारने, रहने और कहने का अपना निजी स्टाइल है।

वह सबसे भिन्न है और अपनी इस भिन्नता के कारण सहज ही किसी भी गोष्ठी में महत्व प्राप्त कर लेता है। सबसे विपरीत होने के कारण ही सबकी नजरें उस पर पड़ती हैं। उसका अपना एक महत्वपूर्ण स्थान बन जाता है। वह दाढ़ी-मूँछें सफाचट रखता है। उसका चेहरा चिकना और गोल आकृति लिये भरा हुआ है। चेहरे पर स्फूर्ति के भाव फूट निकलते हैं। आँखों में चंच-लता नाचती है। उसकी मुस्कान की चचंलता सहज ही मन को मोह लेती है। उसके हर कार्य में चचंलता की झलक स्पष्ट होती है। हाजिर-जवाबी में वह अद्वितीय है। दूसरे के मुँह से बात निकलते ही उत्तर देने में वह दक्ष है। उसका मन चकमक पत्थर की भाँति है, तनिक सी ठेस लगते ही चिन्गारियाँ निकलने लगती हैं।

उसकी वेश-भूषा अपना विशेष महत्व रखती है। वह अपने अन्य साथियों से विपरीत ही कपड़े धारण करता है। उसके कपड़े पूर्णतया देशी ढङ्ग के होते हैं। बिना किनारी की सफेद धोती पहनता और बड़े यत्न के साथ उसमें स्थान-स्थान पर चुन्नट डाल देता है। इस प्रकार की धोती उस सरीखे युवक नहीं पहनते, किन्तु वह उसे पहन कर ही गर्व अनुभव करता है। कुरता पहनता है ढीला ढाला, किन्तु उस कुरते की बाँहें बहुत ही कम चौड़ी होती हैं—फलस्वरूप उसकी कोहनियों के जोड़ों के दबाव के कारण कुर्ते की बाँहें दो भागों में विभक्त हो जाती हैं—पहला होता है कन्धे से कोहनी तक और दूसरा होता है कोहनी से नीचे तक। उसके कुर्ते में दाहिने कन्धे से लेकर नीचे कमर तक बटन लगे होते हैं। कमर पर धोती के ऊपर वह कत्थई रङ्ग का चौड़ा जरीदार फीता पहनता है जिसके बाँई ओर वृन्दाबनी छींट की एक छोटी सी थैली में उसकी घड़ी लटकती रहती है। पांवों में सफेद चमड़े पर लाल रङ्ग के चमड़े का कटावदार जूता पहनता है। जब कभी बाहर जाता है तो किनारीदार मद्रासी चादर उसके बाँये कन्धे पर झूलकर नीचे की ओर लटकती रहती है। यदा-कदा जब वह मित्र-मण्डली के निमन्त्रण पर उनके घर जाता है तो सिर पर मलमल की सफेद कढ़ी हुई लखनऊआ चिकन वाली दुपल्ली टोपी पहनता है।

उसके इस पहनावे को उचित नहीं कहा जा सकता। मुझे तो उसकी

पोशाक देखकर यह भास होता है कि मानो उसने पोशाकों की खिल्ली उड़ाने की इच्छा से ही इस प्रकार की पोशाक को अपनाया है। इस तरह की उसकी पोशाक का महत्व मैं समझने में नितान्त असफल ही रहा, किन्तु जो उसका महत्व समझते हैं उनका विचार है कि उसकी पोशाक बेतुकी अवश्य है पर उसका अपना निजी महत्व है जिसे अंग्रेजी में 'डिस्टिंग्गुइश्ड' कहते हैं।

यह मैं मानने को कभी तैयार नहीं कि अमित ने कभी स्वयम् को अपूर्व और आश्चर्यजनक दिखाने की इच्छा की है। यह अवश्य मान सकता हूँ कि वह फैशन की दिल्लगी उड़ाने में अति रुचि लेता है। जैसे भी बनता है वह फैशन की खिल्ली उड़ाने की चेष्टा करता है। यही उसका शौक है। इसी में उसे रुचि है। वैसे तो राह चलते अनेकों युवक दृष्टिगोचर होते हैं किन्तु अमित उन सब से भिन्न ही है। उसका यौवन स्फूर्ति से परिपूर्ण है। बिना किसी तरह की बाधाओं के उसका जीवन क्रम अपूर्व मस्ती लिये हुए निरन्तर गति से बहता रहता है।

सिसी और लूसी अमित की दो बहनें हैं। यह उनके घरू नाम हैं। उनका रहन, सहन नितान्त कृत्रिम है। ऊँची एड़ी के जूते, खुली छाती वाले लैसदार ब्लाउज, गले में मूंगे मोतियों की माला और शरीर पर अति सावधानी से विशेष ढङ्ग से लपेटी हुयी साड़ी उनका पहनावा है। चलते समय उनके पैरों के जूते खट् खट्, की तेज आवाज करते हैं। उनका स्वर कठोर है। हंसी के तीव्र कहकहे लगाने की उनकी आदत है। तिरछी चितवन करके दृष्टिपात करना उनका स्वभाव बन गया है। चितवन द्वारा ही मनोभाव प्रगट करने में दक्ष हैं। नये फैशन के अनुसार हर समय हाथ में रेशम का छोटा पंखा लिये रहती हैं और रह २ कर उसे अपने गालों और सीने के पास हिलाती जाती हैं। अपने पुरुष मित्रों की कुर्सी के हत्थों पर बैठने में उन्हें आनन्द आता है और बातों बातों में अपना कृत्रिम क्रोध दिखाने के लिये उस छोटे से पंखे का आघात भी अपने मित्र की भुजा पर करने में नहीं चूकती हैं।

अमित का व्यवहार स्त्रियों के साथ भी अति स्पष्ट है। उसके इस व्यवहार को देख कर उसके साथी मन ही मन उससे ईर्षा करते हैं। अमित स्त्रियों के प्रति उदासीन नहीं, किन्तु साथ ही किसी के प्रति उसकी आसक्ति भी दृष्टि-

गोचर नहीं हुई। यह सब होते हुये भी अमित के जीवन में निरन्तर गति से बहने वाले माधुर्य की कमी कभी देखने में नहीं आयी। इतना स्पष्ट है कि स्त्रियों की संगति से उसे अरुचि नहीं। वह उनके साथ जी खोल कर मिलता है, बातें करता है, अपनी बातों से उन्हें हंसाता ही रहता है। वह उनकी संगति से नहीं घबराता।

वह पार्टियों में जाता है। लोगों के साथ मिल कर ताश भी खेलता है और जब चाहता है तो जानकर स्वयम् ही हारने भी लगता है। अपने स्वभाव के अनुसार ही वह किसी भी बेसुरे राग से गाना गाने वाली की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा भी करता है और उससे दूसरा गाना गाने की जिद करने में भी नहीं चूकता। अगर किसी के भद्दे कपड़े देखता है तो उनके प्रति अपनी जिज्ञासा प्रगट करता है और रह २ कर कपड़े का भाव और दूकानदार का नाम तक पूछने का आग्रह करके यह विश्वास दिलाने की चेष्टा करता है कि उसे वह कपड़े अधिक पसन्द आये हैं। वह किसी भी युवती के पिता के साथ बातें करता तो उसके स्वर से पक्षपात् की स्पष्ट झलक दिखाई देती। मजा तो यह है कि सब उसके स्वभाव को जानते और यह समझते हुये कि वह निरपेक्ष भाव ही से इस तरह की बातें कर रहा है, उसकी बातों में मजा लेते। युवतियों की माताओं पर उसका प्रभाव अच्छा पड़ता। उसके शब्द-जाल में वह बंध जाती और समझती कि उनकी कन्या को ग्रहण कर अमित उनकी आशाओं की पूर्ति अवश्य करेगा।

युवतियाँ उसकी आदतों से वाकिफ़ थीं। वे उसकी बातों को अच्छी तरह समझती थीं। मृगतृष्णा में पड़कर वह भटकने को तैयार न थीं और शायद उसकी बातों के चक्कर में अधिक दिलचस्पी नहीं लेती थीं। जहाँ तक स्त्रियों का प्रश्न था वह स्वयम् बड़े चक्कर में था। विभिन्न पहलुओं को सोचता, मन ही मन तर्क करता और अन्त तक किसी निर्णय पर नहीं पहुंच पाता था। उसके निर्णय तक न पहुँचने के कारण ही वह किसी पर भी आसक्ति दिखाने में असमर्थ था, इसी से वह सहज ही सबके साथ मेल जोल स्थापित भी कर लेता। यद्यपि आग फूंस के साथ रहने पर जलने की सम्भावना रहती ही है किन्तु उसके पिछले व्यवहारों ने उसकी ओर से इस आशंका को निर्मूल कर दिया था।

एक दिन अमित अपनी मित्र मण्डली के साथ पिकनिक करने गङ्गा-तट पर गया था। नदी के उस पार काले बादलों के बीच चन्द्रमा निकलने लगा। उस समय उसके पास लिली गांगुली खड़ी थी। अमित ने अति मधुर शब्दों में कहा—"उस पार क्षितिज पर बादलों के बीच चन्द्रमा है और इस पार हम तुम दोनों हैं। मैं समझता हूँ यह सुखद अवसर कभी नहीं आयेगा।"

लिली गांगुली युवती ही थी। उसके हृदय में भी टीस थी। अमित के प्रेम भरे शब्द को सुनकर उसका हृदय आनन्द से विभोर होगया; किन्तु वह सम्भली और उसने वस्तुतः स्थिति पर विचार किया। अमित के शब्दजाल और वाणी-चातुर्य से वह अनभिज्ञ नहीं थी। प्रेम निन्द्रा को त्याग कर वह हँसकर बोली—"अमित, तुमने जो कुछ कहा है वह अक्षरशः सत्य है। यदि तुम इसका वर्णन न भी करते तो भी मैं यह सदैव याद रखती। देखो अभी-अभी पानी में एक मेंढ़क कूदा है, यह भी अनन्त काल तक कभी नहीं होने का।"

अमित ने लिली के व्यंग को समझा, किन्तु मुस्कराकर उत्तर दिया—"लिली, तुम्हारी और मेरी बातों में महान् अन्तर है। आज की इस मधुर वेला में मेंढ़क का पानी में कूदना कोई महत्व नहीं रखता। मैंने तुम्हारा ध्यान जिस ओर आकर्षित किया है उसके महत्व को समझो। मैं, तुम, गंगा की धारा, चन्द्रमा और आकाश के यह तारे--एक ही सूत में बँधे हैं। हम सब में समानता है। इस दृश्य को देखकर मुझे तो ऐसा ज्ञात होता है कि सृष्टिकर्ता ने पागल सुनार की भाँति कंचन के एक गोल चक्र में नीलम के साथ हीरा और हीरे के साथ पन्ना लगा कर एक पहर की अंगूठी बनाई है और उसे सागर के जल में डाल दिया है। मेरा विचार है उसे अब ढूँढ़ कर कोई नहीं निकाल सकता।"

लिली ने मुस्करा कर कहा—"यह भी अच्छा ही हुआ अमित, तुम्हें व्यर्थ ही चिन्तित नहीं होना चाहिये; पागल सुनार का बिल तुम्हें नहीं चुकाना पड़ेगा।"

अमित सहज ही हारने वाला जीव नहीं था। वह मुस्करा कर बोला—"लिली, तुमने इस बात पर विचारने में अवश्य ही भूल की है। तनिक सोचकर तो देखो, यदि कभी इसी नदी के किनारे हमारी तुम्हारी भेंट हो और 'शकुन्तला

का मल्लाह बायल' मछली की पीठ चीर कर हमारे आज के इन सुनहरे क्षणों को निकाल रखे तब हमारी क्या दशा होगी ? क्या चौंक कर हम एक दूसरे की ओर दृष्टिपात किये बिना रह सकेंगे ?"

लिली ने अपने हाथ के कोमल पंखे का आघात अमित के विशाल कंधों पर करते हुये कहा—"तुम शायद यह कहना भूल गये कि मल्लाह बायल के हाथ से तुम्हारे यह सुनहरे क्षण खिसक कर सागर के गर्त में गिर पड़ेंगे। लाख चेष्टायें करने पर भी उनका पता नहीं चलेगा। तुम यह क्यों भूल जाते हो कि पागल सुनार के गढ़े हुये अनेकों क्षण इसी भाँति गिरकर खो चुके हैं। मैं समझती हूँ वह इतने अधिक रहे हैं कि तुम्हें उनका हिसाब रखना भी कठिन होगया है।"

लिली और अधिक अमित से उलझना नहीं चाहती थी, इसी कारण वह चट उठकर अपनी सहेलियों के पास जा पहुँची।

इस प्रकार की अनेकों घटनायें अमित के जीवन में आयीं, किन्तु उसके लिये इनका कोई महत्व ही न था।

उसकी बहिनें सिसी और लिसी उससे विवाह करने का आग्रह करतीं। अनेकों बार उन्होंने पूछा—"अमी, तुम विवाह क्यों नहीं करते ?"

सदा की भाँति अमित का एक ही उत्तर रहता। वह मुस्करा कर उत्तर देता—"विवाह के लिये सबसे अधिक महत्वपूर्ण है उपयुक्त कन्या ! उसको पालेने के बाद ही इस दिशा में कोई विचार करना उचित है।"

सिसी कहती—"बड़ा आश्चर्य है कि इतनी सारी लड़कियों में से तुम्हें कोई पसन्द नहीं आती।"

अमित उत्तर देता—"कैसी बात करती हो, सिसी ! लड़की के दोषों और गुणों की गणना करके विवाह तो प्राचीन काल में होता था। यह जागृति का युग है। अपने मन के मुताबिक पात्री प्राप्त करने की मेरी प्रबल इच्छा है। चाहता हूँ कि विवाह से पहले ही उसके साथ मेरा परिचयहो और परिचय ही में वह मुझे अद्वितीय प्रतीत होने लगे। अभी तक ऐसी किसी भी युवती से मेरा साक्षात्कार नहीं हो सका है।"

सिसी लोकाचार की बात करती—"किन्तु अमी ! यह तुम क्यों भूल जाते हो कि जब तुम्हारा किसी युवती से विवाह होगा तो जैसे ही वह घर में आयेगी, तुम होगे प्रथम और वह होगी द्वितीय । रही परिचय की बात सो तुम्हारा परिचय ही उसका परिचय होगा।"

अमित हँस कर कहता—"तुम नहीं जानतीं सिसी, मैं किस प्रकार की लड़की की बाट जोह रहा हूँ ? वह मेरी कल्पना की सजीव मूर्ति होगी। यद्यपि वह अभी तक घर तक न आ सकी है, किन्तु मैंने अनेकों बार उसे आकाश से गिरते हुए तारे की भाँति देखा है। उसकी कल्पना से ही मेरा मन आनन्द विभोर हो जाता है।"

सिसी पूछती—"तो क्या वह हमसे बिलकुल ही भिन्न है ? हमारे सामान नहीं ?"

अमित गम्भीर होकर कहता—"वह घर में आकर केवल घर के आदमियों की संख्या बढ़ाने में असमर्थ है। मेरे हृदय को वह शान्ति अवश्य देती है।"

लिसी जिज्ञासावश पूछ ही बैठती—"समझ में नहीं आता सिसी, अभी भैय्या को विभी बोस क्यों नहीं भाती ? उस बेचारी की दशा बड़ी दयनीय है। वह तो भैय्या की राह में पलकें बिछाये रहती है। भैय्या का इशारा अगर पा जाये तो अभी भागी चली आये ? जब उसका प्रश्न आता है, तो कहते हैं–उसमें कल्चर नहीं है। समझ में नहीं आता एम० ए० 'बौटोनी' में फर्स्ट-पास लड़की में उन्हें कल्चर ही नजर नहीं आती ? मैं तो विद्या ही को कल्चर समझती हूँ।"

अमित दलील देता—"यह तो मैं भी जानता हूँ, किन्तु लिसी, तुम कल्चर के सही मतलब शायद नहीं पा रही हो। विद्या हीरे के समान है और उससे जो प्रकाश आलोकित होता है, उसे कल्चर कहते हैं। हीरे में भार है, किन्तु प्रकाश में जगमगाहट है।"

अपनी सखी विभी बोस के लिये अमी के यह भाव लिसी को नहीं भाते। वह क्रुद्ध होकर कहती–"तुम्हारे हृदय में विभी सरीखी लड़की को पाने की चाह नहीं है ? मैं तो समझती हूँ तुम उसके योग्य हो ही नहीं। यदि मैंने

कभी यह देखा कि तुम उससे विवाह करने को आतुर हो तो मैं स्वयम् जाकर उसे कहूँगी कि वह भूलकर भी तुम्हारी ओर न ताके।"

अमित सहज भाव में लिसी को समझाता—"तुम भूलती हो, बहन ! यदि मैं विभी बोस से विवाह करने के लिये पागल हो जाऊँगा तो तुम विवाह की चिन्ता न करके मेरी चिकित्सा के लिये भागी फिरोगी।"

इन तमाम कारणों ही से अमित के अपने परायों ने उसके विवाह की आशा छोड़ दी थी। उन्होंने मन ही मन सोच लिया था कि उसमें विवाह का बोझ उठाने का साहस नहीं है। वह कायर है और विवाह की जिम्मेदारियों से घबराता है। इसी कारण असम्भव स्वप्न का सहारा लेकर लोगों को बेवकूफ़ बनाये फिरता है। उसकी उल्टी सीधी बातों से लोग चौंकते हैं। उसका मन पिशाच दीपिका के समान है जिसे केवल देखा ही जा सकता है और उसे पकड़ कर घर में नहीं लाया जा सकता।

उसकी दिनचर्य्या ही कुछ ऐसी है। दिन भर वह मस्त होकर मित्र मण्डली के साथ हा-हा-हू करता फिरता है। फिर यों होटल में मित्रों को जोड़ बटोर कर चाय पीता पिलाता रहता है। कभी अपनी मित्र मण्डली को लेकर अकारण ही मोटर में इधर उधर घूमता रहता है। चाहे कुछ खरीद डालता है और जिसे चाहता है खरीदी हुई वस्तु अकारण ही दे डालता है। अनावश्यक अंग्रेजी साहित्यिक पुस्तकों को खरीदता है, चाहे जहाँ छोड़ आता है और फिर कभी उन्हें लौटा कर लाने की नहीं सोचता। इन कारणों से उसकी बहनें उससे खिन्न रहती हैं। किन्तु उसे इसकी कोई परवाह नहीं।

जब और जहाँ चाहता है वह मन मानी बात कह देता है। अक्सर उसकी बातें बिल्कुल विपरीत होती हैं किन्तु उसे इससे कोई सरोकार नहीं। एक दिन एक जगह कोई सज्जन प्रजातन्त्र के गुण-गान कर रहे थे। अमित से न रहा गया, वह बोल ही पड़ा। कहने लगा—"जिस समय सती की मृत्यु के उपरान्त भगवान शिव दुःखी होकर सती का मृतक शरीर लिये भ्रमण कर रहे थे भगवान विष्णु ने उनका मोह दूर करने के लिये अपने सुदर्शन चक्र की सहायता से सती के शरीर को खण्ड २ कर डाला। जहाँ २ सती के शरीर के खण्ड गिरे हैं वहाँ २ ही पीठ स्थापित हैं। उसी प्रकार इस प्रजातन्त्र ने समस्त समाज

को अनेकों टुकड़ियों में विभक्त कर दिया है। प्रजातन्त्र के ही कारण कुलीनतं-(एरिस्टोक्रैसी) की पूजा प्रारम्भ हो गयी है। समाज के हर क्षेत्र में इस प्रकार की कुलीनतंत्र की टुकड़ियाँ छा गयी हैं। राजनीतिक, सामाजिक आदि क्षेत्रों में इन टुकड़ियों की भरमार है। दुःख तो यह है कि उनमें से किसी में गम्भीरता नहीं, उसका एकमात्र कारण है कि उनमें से किसी को अपने ऊपर विश्वास ही नहीं है।"

इसी प्रकार एक दिन की घटना है कि स्त्रियों के ऊपर पुरुषों के आधिपत्य को लेकर एक सज्जन स्त्रियों का पक्ष लेकर पुरुषों की निन्दा कर रहे थे। उनकी बातें सुनकर अमित से नहीं रहा गया। उसने अपने मुँह की सिगरेट शीघ्र ही निकाल फेंकी और बोला—"आपकी बात में वजन नहीं। सोचकर देखिये यदि पुरुष का आधिपत्य समाप्त हो जाता है तो स्त्रियों का आधिपत्य प्रारम्भ हो जायेगा। इस बात को मत भूलिये कि पुरुषत्व से हीन आधिपत्य अति भयंकर होगा।"

स्त्रियाँ बौखला गयीं। उनके हिमायती पुरुष भी क्रुद्ध हो गये और अमित से अपने कथन की पुष्टि की माँग करने लगे।

अमित घबराने वाला जीव नहीं था। उसने स्थिर होकर कहा—"जिसके पास बल है वह अपने बल का प्रयोग करता है। शक्ति के द्वारा ही वह अन्य जीवों को बांध कर अपने आधीन रखता है। जिसके पास बल नहीं वह प्रपंचों का सहारा लेता है। छल ही उसका बल है। शक्ति से बांधने वाला क़ैद तो करता है मगर भरमाता नहीं। छल बांधता भी है और साथ ही भरमाता भी है। स्त्री का दूसरा नाम छल है। इसीलिये तो मैं कहता हूँ वह पुरुष को छल से बांधती है और उन्हें भरमाती रहती है। प्रकृति भी स्त्री को सहायता देती रहती है।"

इस प्रकार की एक और घटना है। एक दिन साहित्य सेवियों की एक गोष्ठी थी। उसका विषय था—रवीन्द्र बाबू की कविता। अपने जीवन में प्रथम बार अमित ने इस सभा का सभापतित्व करना स्वीकार किया था। सभा जाने से पहले ही उसने अपना मार्ग निश्चित कर लिया था और अपने आवश्यक सामान को लेकर ही गया। इस सभा में अनेकों वारिष्ठ सज्जनों ने अपने भाषण

दिये। उन सबके भाषणों का सार यही था कि रवीन्द्र बाबू की कविता साहित्यिक क्षेत्र में अपना विशिष्ट महत्व रखती है। केवल आधुनिक वातावरण में पले हुये कालेज के दो एक अध्यापकों को छोड़कर सब इस मत के पक्ष में थे। ऐसा होना स्वाभाविक ही था।

सभापति के आसन से उठकर अमित ने अपने उद्गारों को व्यक्त किया। उसने कहा—"मेरी राय में कवि समुदाय को उचित है कि वह अपने जीवन के केवल पाँच वर्ष ही कविता करें। उन्हें पच्चीस वर्ष से लेकर तीस वर्ष की आयु तक ही कविता करनी चाहिये। यह सीमा उचित ही है। इसी आयु में कवि अपने जीवन की मधुर भावनाओं को कविताओं के रूप में व्यक्त करने में सफल हो सकता है। इसके बाद वह हमें हमारी इच्छा के अनुकूल कवितायें न दे सकेंगे। जिस प्रकार आम की फसल समाप्त हो जाने पर अच्छा आम प्राप्त नहीं हो सकता उसी प्रकार इस आयु के बाद उनकी कविता में उस रस और मधुरता का नितान्त अभाव हो जायेगा। कवियों की आयु कम होती है। दार्शनिक की आयु लम्बी होती है और शायद इसी कारण हमारे बूढ़े कवि अधिक आयु में आकर कवि से दार्शनिक बन जाते हैं।.........रवीन्द्र बाबू के विरुद्ध सबसे बड़ा आरोप यह है कि वह अंग्रेज कवि 'वर्डस् वर्थ' की भाँति इतनी अधिक आयु तक जीवित हैं। अनेकों बार यमराज के घर से उन्हें बुलाने का संकेत तक हुआ है किन्तु जनाब हैं कि किसी तरह मौत को भी धोखा देने में सफल हो ही जाते हैं। यदि वे इज्जत के साथ इस दुनियाँ को छोड़ने को तैयार नहीं तो हम सब का धर्म है कि हम उनको त्याग दें। उनकी कृतियों में रुचि न लें। यदि हम इनके साथ ऐसा नहीं करते हैं तो हमें आगामी जीवन में इन सरीखे अनेकों नवागुन्तकों का सामना करना पड़ेगा। वह भी इनकी परिपाटी का अनुकरण करेंगे। उनके राज्य का कभी अन्त न होगा।

'एवोल्यूशन' (विकास) के ही आधार पर यह संसार जीवित है। इस तरह की परम्परा पर चलने के कारण हम अपना विकास खो देंगे। झूठा औ८ बासी खाने से हमारा स्वास्थ्य गिर जायेगा। हम क्षीण हो जायेंगे और जीवित रह कर भी मृत के समान ही प्रतीत होंगे। रवीन्द्र बाबू हमें विकास से परे रख रहे हैं। वह जो कुछ भी हमें देते हैं वह झूठा है, बासी है। उसके

द्वारा हमारा विकास असम्भव है। पाँच साल पहले अच्छी लगनी वाली वस्तु अब हमें आकर्षित नहीं कर सकती। निरन्तर एक ही स्थान पर खड़ा रहने वाला जीवित नहीं रहता। वह मृतक के सदृश्य हो जाता है। जब तक उसे ठेस नहीं लगती वह अपने स्थान पर स्थिर रहता है। तनिक से आघात से ही वह धाराशायी हो जाता है। 'सैन्टिमेन्टों' (भावुकता) के कारण ही हम उसको नहीं छेड़ते, आघात् नहीं पहुंचाते। देखा जाये ऐसा न करके हम समाज का अकल्याण ही करते हैं। हम उस सड़े गले, स्थिर से मोह करके अच्छा नहीं करते। नवीन उत्साहों को भंग करते हैं। अपने विकास को स्वयं ही रोकते हैं। रवीन्द्र बाबू भी इसी तरह हमारे मार्ग में बाधक हैं। उनका एक अपना दल है जो उनकी ख्याति का ढिंढोरा पीट कर मृतक में जान डालने का असफल प्रयास कर रहा है। किन्तु मैंने प्रण किया है कि मैं विकास के मार्ग से इस रोड़े को हटाऊँगा और रवीन्द्र बाबू तथा उनके दल वालों की इस चाल का पर्दाफ़ाश करूँगा।"

सभा में बैठे हुये मणि बाबू ने अपने चश्मे को ठीक करते हुये प्रश्न किया—"आपकी बातों से स्पष्ट होता है कि आप साहित्य में से वफ़ादारी (लायल्टी) को उठा देना चाहते हैं।"

अमित ने कड़े स्वर में कहा—"ऐसा ही करने का मेरा फ़ैसला है। यह जागृति का युग है। हमें अपने विकास के लिये ऐसा करना ही चाहिये। रवीन्द्र बाबू के विषय में मेरी दूसरी शिकायत यह है कि उनकी रचनायें उनकी हस्त-लिपि के समान गोलमोल अथवा लहरदार हैं। उनकी कविताओं में नारी जैसी लचक और चन्द्रमा के समान शीतलता है। इस प्रकार की कविताओं का युग बीत गया। अर्वाचीन काल की कविताओं का भार हम अधिक समय तक उठाना नहीं चाहते। जागृति के इस युग में हमें फूल नहीं, कांटे चाहिये। विकास के लिये फूलों की अपेक्षा कांटे अधिक लाभदायक होते हैं। हमें वह साहित्य चाहिये जो हमारे मन को नवीन उत्साह से परिपूर्ण करने की क्षमता रखता हो। हमें वह साहित्य कदापि नहीं चाहिये जो हमारे मन को भरमाये रखे। हमें अपने हृदय को बदलना होगा। मन की शान्ति के लिये हम कविता पाठ नहीं करेंगे हमें तो कविता द्वारा मन में आग लगानी है ताकि हमारा हृदय हमारे उत्साह

को भंग होने से रोकता ही रहे। हमें मोह, माया, पुनर्मिलन के गीत नहीं चाहिये। हमें चाहिये वह बिजली भरे राग जिन्हें सुनकर हमारा पुरुषत्व जाग उठे, हमें आगे बढ़ने की प्रेरणा मिले। सन्तुष्टि हमारे मार्ग को रोकती है। हमें इस नशे को छोड़ना ही पड़ेगा। यदि हमें ताजमहल अच्छा लगता है तो हमें उसे अच्छा लगाने की खातिर ही उसके नशे को छुड़ाना पड़ेगा।"

नोट—इतना बता देना आवश्यक है कि अमित की बातों को शृङ्खला-बद्ध करने में हमारे संवाददाता का मस्तिष्क चकरा गया। उसने जो रिपोर्ट भेजी, वह अमित के भाषण से भी अधिक जटिल हो गयी थी। जो कुछ भी सार हमें मिल सक. वह हमने ऊपर उद्धत करने की चेष्टा की है।

लोग ताजमहल की बात सुनकर चौंके। उन्होंने कहा—"अच्छी वस्तु सबको प्रिय होती है। ऐसी प्रिय वस्तुएँ जितनी अधिक से अधिक हो सकें उतना ही अच्छा है।"

अमित ने गम्भीरता से कहा—"यही तो आपकी भूल है। असल में बात :इसके बिलकुल ही विपरीत है। संसार में अच्छी वस्तुएँ अधिक नहीं होतीं। अच्छी वही कहलाती हैं जो कम होती हैं। जिनको आज हम अच्छा समझते हैं, यदि वह कल प्रचुरता से प्राप्त होने लगें तो उनका महत्व कम हो जायेगा। हमारे हृदय में उनके लिये कोई चाह नहीं रहेगी। एक दिन में ही वह हमारे लिये साधारण वस्तु बन कर रह जायेंगी।............और जिन व्यक्तियों ने कवित्व को अपना पेशा बना रखा है और निरंतर साठ, सत्तर वर्ष से अपना अधिपत्य जमाये बैठे हैं, हमें उचित है, हम उन्हें साहित्यिक क्षेत्र से निर्वासित कर दें। उनके साहित्य का बहिष्कार करदें और उन्हें मार डालें—मेरा अभिप्राय उनकी शारीरिक मृत्यु से नहीं वरन् साहित्यिक मृत्यु से है। यदि हम ऐसा नहीं करते तो वह अपने धंधे को कायम रखेंगे। हमें थोथा साहित्य देंगे, चोरी करेंगे और अपनी पहली रचनाओं को ही फिर-फिर कर नये कलेवर में रखना चाहेंगे। यदि आप विकास चाहते हैं तो ऐसे कवि समुदाय को मारना ही पड़ेगा, साहित्यिक क्षेत्र से उन्हें निकालना ही पड़ेगा, उनका स्थान रिक्त करना ही पड़ेगा और उनके स्थान पर प्रवीण अध्यापकों, राज-नीतिज्ञों और समालोचकों को बिठाना होगा।"

तपाक से अमित बोला—"निवारण चक्रवर्ती को।"

सभा में तहलका मच गया। उन्होंने कभी इस नाम के किसी कवि को नहीं जाना था। वह कौतुक वश बोले—"कौन हैं निवारण चक्रवर्ती ? हम तो उन्हें जानते ही नहीं ?"

अमित मुस्करा कर बोला—"मेरे कहने का अभिप्राय भी तो यही है कि इन धूम-धड़ाके वाले लोगों ने आपकी आँखों को इतना चौंधिया रखा है कि आप अपने पास पड़े हुये हीरों को देखने में भी असमर्थ हैं। मैं आपको जगाना चाहता हूँ ताकि आप बनावट से बच सकें और सच्चे जौहरी की भाँति उत्तम रत्नों को परख सकें। आज आप जिस निवारण चक्रवर्ती के नाम को सुनकर चौंके हैं, कल आपको उसकी प्रतिमा के गीत गाने होंगे।"

लोगों ने कौतूहल वश पूछा—"उसकी प्रतिमा का जब कोई प्रमाण सामने नहीं आता, इस विषय पर कुछ नहीं कहा जा सकता। पहले उनका कुछ नमूना तो देखें।"

अमित ने सुन्दर जिल्द वाली एक पतली सी कापी अपनी जेब से निकालते हुए कहा—"आज आपके सम्मुख नमूना भी पेश किये देता हूँ। सुनिये—!"

लेकर आया हूँ
एक अपरिचित नाम धरा पर,
इस परिचित जनता के बीच।
मैं आने वाला हूँ,
जनसाधारण का अति विस्मय हूँ।
पट खोलो,
विधाता के सन्देसे को दिल पर तोलो।
महाकाल ने,
बिन लक्ष्य अक्षर भेजे हैं,
है कोई साहसी यहाँ पर
जो मृत्यु को देखकर
उसका उत्तर दे सकता है।

अव्रण होता कुछ नहीं।
मूर्खता की सैन्य है राह रोके खड़ी।
क्रोधित हो
आ जाती है छाती पर
बेकार ही तड़प कर;
उसी प्रकार जैसे लहरों की बेकारी
नाश करती है निज का तोड़कर
आत्मघात गर्व से पत्थरों पर गिर-गिर कर।
बिन कुसमावली के है, मेरा वक्ष सूना,
कुण्डल, बाजू नहीं है, बिना बस्त है सीना।
इस सूने माथे पर है
विजय का तिलक।
कपड़े फटे हैं, वेश है गरीब का।
करूँगा शून्य
तुम्हारा भण्डार
तनिक खोलो द्वार।

अचानक

दिया मैंने हाथ बढ़ाकर
लौटेगा हाथ तुमसे कुछ पाकर।
तुम्हारा दिल धड़कता है, शरीर कांपता है,
यह समस्त तुम्हारा विश्व दलदल है।
भयातुर हो चीखता हूँ
दिशाओं को चीर के
हृदय उनका फाड़कर
"भागजा अभी वापिस
ओ दुष्ट मूर्ख भिखारी
जो तेरा कण्ठ-स्वर कहता घूमता है
अर्धनिशा के मध्य वो

छुरा भोंकता सा प्रतीत होता है।"
लाओ मेरे आयुध।
मेरे इस वक्ष को
करो तुम उनसे बद्ध।
मृत्यु का बध मृत्यु करती है, करने दो,
नष्ट होंगे नहीं मेरे अनश्वर प्रान
जाऊंगा कर उनको दान।
आबद्ध करलो, गहलो,
शृङ्खलाओं में जकड़लो,
सब यह जायेंगे क्षण में टूट
हृदय में मुक्ति भरी अटूट।
देखना होकर विस्मित
शक्ति मुक्ति में भरी अमित
तुम्हारी मुक्ति है
मेरी मुक्ति से आबद्ध।
शस्त्रास्त्र मेरे निनालो।
वार मुझ पर कर डालो।
समस्त विद्वतजन मिलकर
शक्ति अपनी से हिलकर
करेंगे मेरी सत्ता का खण्डन।
मैं समझता हूँ बूझता हूँ
चलेंगे दुतर्फी तर्क के बाण
वाक्युद्ध होगा चातुरी-परिमाण।
होजायेंगे सब छिन्न नितान्त
रहेगा न कोई शान्त
धरोहर की यह बातें
खोलेंगो मुंदी आँखें जब
दृष्टिगत होगा प्रकाश तब।

करो तुम अग्नि आज प्रचण्ड ।
बनी है जो आज भलाई
कल बने चाहे बुराई,
मिटे जिसको मिट जाने दो
दुनियाँ को शोर मचाने दो,
हृदय से त्यागो सोच-विचार ।
मेरी इस अग्नि भरी परीक्षा से
इससे मिलने वाली शिक्षा से
होंगे कृत-कृत सब लोक ।
सरल नहीं वाणी मेरी ।
करती विरोधी पर
कस-कस कर यह वार,
उसे विस्मित कर देगी
कुबुद्धि को बुद्धि देगी ।
छन्द मेरे भरे मस्ती से
जूझते फिरते सभी से,
शान्ति का ज्ञान पाने की लगन में,
शेष कुछ अब उनके न तन में ।
करेंगे तर्क जो धारण कर अभिमान,
दिखेगा धीरे-धीरे उनको मेरा ज्ञान,
उन्हें फिर होगा सन्ताप
कहेंगे वे अपने आप ।
क्रोध, भय और दुःख में
इस चराचर सृष्टि में ।
जीता है जो अपरिचित
उससे सभी हैं परिचित,
जो था कभी अपरिचित
वो आज है सुपरिचित,

वैशाख की आँधी है जब आती
धरा तो धरा अम्बर भी हिलाती,
हो जाता है मानव स्तब्ध
मचता है जब भीषण-युद्ध ।
दिल खोलकर घन
नीर बरसाते छन-छन
शृङ्खला को तोड़कर
और सबों को छोड़कर
सारे संसार में
जब होता है तान में ।

रवीन्द्र बाबू का दल उस दिन चुप रहा । सभा विसर्जन होते समय धमकी अवश्य देता गया कि वह भी लिखकर ही इस बात का जवाब देगा । उस सभा को मूर्ख बनाकर अपनी बहिन सिसी के साथ जब अमित मोटर में बैठकर घर लौटने लगा तो सिसी ने कहा—"अमी, तुमने फिर आज सबको बेवकूफ बना ही डाला । अवश्य घर से चलने के पहले ही तुमने निवारण चक्रवर्ती को अपनी कल्पनाओं में साकार कर लिया होगा और उसे भूतल पर लाने के लिये वह कापी भी प्रमाण-स्वरूप जेब में रख ली होगी ।"

अमित ने मुस्करा कर उत्तर दिया—"मैं विधाता हूँ । अपनी कल्पनाओं को साकार करने में समर्थ हूँ । मेरी कल्पनाओं का कवि निवारण चक्रवर्ती आज साकार हो उठा है, अब उसे कोई नहीं रोक सकता ।"

सिसी को अमित की इन बातों में आनन्द आता है । वह उसकी इस तरह की कल्पनाओं और व्यवहारों से अत्यधिक प्रभावित है । उत्सुकता वश पूछ ही बैठी —"एक बात तो बताओ अमी, क्या तुम दिन भर में कहने वाली बातों को सुबह उठते ही सोच लेते हो ?"

अमित बहिन के इस प्रश्न पर मुस्करा उठा, बोला—"भविष्य के लिये जो सदैव तैयार रहता है, उसे ही सभ्य कहते हैं । यह बात मैंने अपनी डायरी में पहले से ही लिख रखी है ।"

सिसी बोली—"किन्तु इतना मैं अवश्य जानती हूँ कि तुम्हारा अपना

कोई निजी दृष्टिकोण नहीं। जब तुम्हें जैसा भाता है वही करते हो और कहते हो।"

अमित बोला—"मेरा मन तो दर्पण है। इसीलिये तो वह औरों के प्रतिविम्ब को उचित रीति से प्रस्तुत करने में समर्थ होता है। यदि अपने निजी दृष्टिकोणों से मैं उसे पोत डालूँ तो उसका यह गुण जाता रहेगा।"

सिसी ने कहा—"ज्ञात होता है इसी प्रकार औरों का प्रतिविम्ब लेते-लेते ही तुम्हारा जीवन शेष हो जायेगा।"

२.

घातक

गर्मियों में पहाड़ पर जाने की इच्छा हुई। अमित की बहिनें लूमी और सिसी दार्जलिंग चलने पर जोर दे रही थीं। उनकी प्रिय सखी विभी बोस पहले ही से वहाँ पहुँच चुकी थी। अमित दार्जलिंग जाने के पक्ष में नहीं था। उसका अपना दृष्टिकोण था। वह जानता था कि पहाड़ों पर लड़कियों, उनके पिताओं आदि की अधिक भीड़-भाड़ रहती है। फैशन परस्त लोगों के लिये अपने चुने हुए कुछ पहाड़ हैं। वहाँ उसी प्रकार की बस्तियाँ भी बस गयी हैं और उसी तरह के लोग भी जाते हैं।

काफी सोच विचारने के बाद उसने शिलांग जाना निश्चित् किया। उसका एकमात्र कारण था कि जिस प्रकार की भीड़-भाड़ से वह बचना चाहता था, वह शिलांग में नहीं थी। फैशनेबिल लोग शिलांग से प्रभावित नहीं थे। वहां विलासता और कृत्रिमता का नाम निशान भी नहीं था। अन्त में उसने अपना निर्णय अपनी बहिनों को सुनाया। वह खिन्न होगयीं और शिलांग जाने को तैयार नहीं हुईं। दोनों अमित को छोड़कर दार्जलिंग चली गयीं, विभी से मिलीं। किन्तु जब विभी को ज्ञात हुआ कि अमित नहीं आया तो उसके हृदय का आनन्द जाता रहा। उसे दार्जलिंग सूना सा लगने लगा।

यद्यपि एकान्तवास की इच्छा से ही अमित शिलांग गया था किन्तु वहाँ के सूनेपन ने उसके हृदय को झकझोर डाला। उसे शिलांग का सूनापन खलने लगा। कहानियों की पुस्तकें उसने उठाकर भी न देखीं। कुछ दिन तक अवश्य ही वह देवदार के वृक्षों की छांह में पहाड़ी ढालों पर पड़ा सुनीति चटर्जी की पुस्तक 'बंगला भाषा का शब्द ताव' पढ़ता रहा। चंचलता उसकी रग २ में बसी थी, किन्तु यहाँ का वातावरण ही ऐसा था मानो सब जड़ हों, उनमें स्थिरता ही कूट २ कर भरी हो। ऐसे वातावरण के कारण वह खिन्न हो उठा और शिलांग से नीचे उतर कर सिलहट अथवा सिलचर में जाने की बात सोचने लगा। वह ऐसा जीवन चाहता था जहाँ गति हो, चचंलता हो; ताकि उसे जीवन का आनन्द आ सके।

असाढ़ मास आया। नीलाम्बर आकाश पर श्याम-घन छाने लगे। जल से स्फूर्ति पायी पवन मन्द २ बहने लगा। वर्षा निकट आयी देख अमित का मन भी प्रसन्नता से भर गया। उसने कुछ दिन चेरापूँजी जाकर रहने की बात भी सोची ताकि वह वर्षा ऋतु का पूर्ण आनन्द प्राप्त कर सके।

एक दिन उसने वर्षाकालीन पोशाक पहनी। शरीर पर खाकी नर्फाक की कमीज़ धारण की और उससे मिलता जुलता नेकर पहना। ऊनी मोजे पैरों में पहने और उनके ऊपर मोटे २ ऊँची बाढ़ वाले जूते धारण किये। सिर पर 'सोला' हैट लगाया। इस तरह की वेश-भूषा धारण करके वह कुछ अजीब सा दिखने लगा। यद्यपि उसकी दोनों जेबों में छोटी २ विभिन्न भाषाओं के साहित्य की पुस्तकें थीं परन्तु वेश भूषा से ऐसा लगता था मानो वह सड़क की जाँच करने वाला कोई इन्जीनियर हो।

वह दिन भर अपनी मोटर को पहाड़ी सड़कों और ढालों पर दौड़ाता फिरा अन्त में घर लौटने लगा। उसके घर की ओर जो सड़क जाती थी वह पहाड़ी ढाल पर थी। एक ओर पहाड़ की ऊँची सतह थी और दूसरी ओर ढाल था जहाँ प्रकृति ने अपनी कारीगरी द्वारा विभिन्न प्रकार की वनस्पतियाँ उगाकर उसे सुन्दर बन में परिवर्तित कर दिया था। घुमावदार सड़क पर वह अपनी मोटर बड़ी ही लापरवाही से चलाता हुआ घर की ओर बढ़ रहा था। वह

जानता था कि इस सड़क पर आवागमन का नितान्त अभाव ही रहता है अतः सावधान होकर मोटर चलाने की उसने कोई चेष्टा ही नहीं की।

अपनी कल्पनाओं में डूबा हुआ अमित चला जा रहा था कि एक मोड़ पर जाकर उसने देखा कि एक मोटर नीचे की ओर से चली आ रही है। सड़क पर इतनी गुंजायश नहीं थी कि बचकर निकला जा सके। जब तक उचित मार्ग नहीं सूझता उसने गाड़ी रोकने के लिये ब्रेक लगाये किन्तु ब्रेक लगते २ दोनों गाड़ियाँ आपस में टकरा गयीं। खैर तो यही हुई कि किसी मोटर को कोई नुकसान नहीं पहुँचा। नीचे से आने वाली मोटर धक्का खाकर नीचे की ओर लुढ़की और बगल वाली पहाड़ी की ऊँची सतह से टिक गयी। गाड़ी जब रुक गयी तो उस मोटर का दरवाजा खुला और उसमें से एक युवती बाहर निकली।

उसके चहरे पर भय की रेखायें स्पष्ट थीं। मृत्यु की आशंका से उसका हृदय कांप चुका था। यकायक नव-जीवन पाकर वह खिल उठी थी। भय और प्रसन्नता के दोनों भाव अलग २ उसके चहरे पर स्पष्ट दीख पड़ते थे। हो सकता है कि किसी अन्य अवसर पर किसी सुसज्जित कमरे में अन्य मनुष्यों के बीच अमित को उसका रूप न भाता किन्तु इस प्रकार की भाव भंगिमायें उसे बहुत भायीं और उसका मन अनायास ही उसकी ओर खिच कर रह गया। वह उसकी चितवन को निहारता रहा। वह युवती उसके हृदय पटल पर अमिट छाया बन कर अचल हो गयी।

युवती की वेश भूषा साधारण ही थी। शरीर पर शुभ्र ऊनी साड़ी थी और उसी प्रकार का ऊनी ब्लाउज़ था। पावों में सफेद रंग के चमड़े की देशी चप्पलें थीं। सांवला रंग था किन्तु उसमें चमक थी। बदन छरहरा था। भौंहें कमान के समान थीं और उसके काले घने बालों का जूड़ा बंधा हुआ था। ब्लाउज़ की बाहें उसकी कलाइयों तक थीं फिर भी उसकी कलाईयों में पड़े हुये शुद्ध कुन्दन के कड़े स्पष्ट चमक रहे थे।

अमित ने अपनी मोटर का दरवाजा खोला। टोप सिर से उतार कर मोटर ही में रख दिया और धीरे २ पग रखता हुआ उस युवती के सम्मुख जाकर

अपने अपराध की सज़ा पाने के लिये जा खड़ा हुआ। उसको इस तरह देखकर युवती कौतूहल में पड़ गयी। वह कुछ नहीं बोली।

अमित ने अपराधी की भाँति दीनता भरे शब्दों में कहा—"मैं जानता हूँ ग़लती मुझसे हुई है।"

युवती मुस्कुरा कर बोली—"मेरे विचार से गलती मेरी है।"

युवती का कण्ठस्वर कोमल था। उसके मुख से निकलने वाले शब्द अति प्रिय थे। उन शब्दों ने अमित को अति प्रभावित किया। घर आकर उसने उन शब्दों के विषय में लिखा—"उसके शब्द, खुशबूदार अम्बरी तम्बाकू के धुँये के समान मृदु थे जो जल के सम्पर्क से अपनी कड़वाहट दूर करके केवल सुगंध ही बरसाता रहता है।"

उस युवती ने अपनी गलती को स्पष्ट करते हुये कहा—"आज एक मित्र के आने की बात थी अतः उन्हें खोजने ही में निकली थी। ज्ञात होता है वह आये नहीं। लौटने में ढाल पर चढ़ना आवश्यक था क्योंकि मोटर को घुमाने लायक स्थान था ही नहीं। इसी कारण हम ऊपर आ रहे थे कि आपका धक्का खाना पड़ा।"

अमित ने दार्शनिकों की भाँति कहा—"आप भूल रही हैं। यह उस कुटिल ग्रह की चाल है जो ऊपर बैठा समस्त संसार को नचाता रहता है।"

नीचे से आने वाली मोटर के ड्राइवर ने अब तक मोटर की जांच कर ली थी। वह युवती के पास आकर बोला—"वैसे तो मोटर को कोई विशेष हानि नहीं हुई है किन्तु फिर भी इसे पुनः लौटाने में थोड़ी बहुत मरम्मत करनी ही पड़ेगी। मरम्मत में थोड़ी देर लगेगी।"

अमित ने दीन स्वर से कहा—"यदि आपको आपत्ति न हो तो मैं आपके स्थान तक अपनी गाड़ी में पहुँचा दूँ ?"

युवती ने सहज स्वभाव से उत्तर दिया—"धन्यवाद ! मुझे पहाड़ों पर पैदल चलने का अभ्यास है।"

अमित ने तर्क करते हुये कहा—"इसका अभिप्राय यह है कि आपने मुझे क्षमा नहीं किया। तभी तो आप मेरी इस छोटी सी प्रार्थना को स्वीकार नहीं कर रही हैं।"

युवती अमित की इस बात से दुविधा में पड़ गयी। वह शान्त ही रही। तब अमित को फिर बोलना पड़ा। उसने कहा—"मोटर चलाने में मैं दक्ष तो नहीं हूँ। अभी कुछ देर पहले मुझसे तो गलती हो चुकी है, वह इस बात का प्रमाण भी है। किन्तु इतना जो मैं विश्वास के साथ कह सकता हूँ कि अब आपको घर पहुँचाने तक ऐसी गलती नहीं करूँगा। आशा है आप मुझे अपनी त्रुटि सुधारने का यह मौका देकर अवश्य कृतार्थ करेंगी।"

अपरिचित के साथ प्रथम परिचय में ही घुल-मिल जाना भारतीय नारी के स्वभाव के प्रतिकूल है। आकर्षण हो सकता है, परन्तु फिर भी हृदय में अज्ञात विपत्तियों की आशंकायें बनी ही रहती हैं। युवती भारतीय नारी ही थी। उसका हृदय भिन्न नहीं था। जी खोलकर वह अमित को उत्तर देनें में में असमर्थ थी। उसकी विनय को भी ठुकरा न सकी। लाचार हो अमित की मोटर में जा बैठी। अमित भी सधे हुये ड्राईवर की भाँति बिना कुछ बोले-चाले उसे मोटर में बिठाकर यथा स्थान जा पहुँचा। निर्दिष्ट स्थान पर पहुँच कर वह लड़की मोटर से उतरी और बोली—"धन्यवाद! आपने मेरे लिये बहुत कष्ट उठाया। यदि कल समय निकालकर आप यहाँ आने का कष्ट करें तो अति कृपा होगी। मैं आपका परिचय अपनी स्वामिनी से कराना चाहती हूँ।"

वैसे तो अमित के पास उस समय भी कोई काम नहीं था। एक बार तो मन में आया कि कहदे, मैं अभी उनसे मिल सकता हूँ, पर न जाने क्या सोचकर चुप ही रहा और घर लौट आया। अपनी आदत के अनुसार आज की इस मुठ-भेड़ को उसने अपनी डायरी में लिखा—"यह भी प्रकृति का कैसा उपहास है? मुझे परिचित भी कराया तो कितनी विषम परिस्थिति में। ज्ञात होता है, हम दोनों चिर-परिचित हैं। हम दोनों को साथ-साथ जीवन-पथ पर चलना है। एक सूत में बँधना है। जीवन का क्रम शायद इसी प्रकार प्रारम्भ होने को था।"

मन ही मन वह प्रसन्न था। आज की इस घटना से उसके मानस पटल पर एक तरह की बिजली सी कौंध गयी थी। हृदय में युवती के प्रति विशेष आकर्षण था और बाहर श्याम-घन अपनी कोमल बूंदों से पृथ्वी के साथ ठिठोली कर रहे थे। उसका मन उद्विग्न हो उठा और उसने अपने आप ही

बुद्बुदाया—"कवि निवारण, सचेत हो जाओ। मेरी वाणी में समा जाओ।"

अमित ने अपनी पतली सी कापी निकाली और कविता पढ़ने लगा—

इस बिन बँधी गिठा ने रोकी है राह आज,
बहती पवन के
राही हम दोनों ने
संसार से विलग हो, हैं कहीं बसाया राज।
धूल के प्रिय कण, डालकर गुलाल लाल
उन्मत्त हो मस्त मन से, चीतते हैं लाल गाल।
मेघ के इन बादलों का पहन कर चीर
नाचती है दिगङ्गना रंगीन वस्त्रों ने अधीर।
होगया मैं चकाचौंध
चित्त गया मेरा कौंध।
हमारे यहाँ कनक-चम्पा के कुँज हैं नहीं,
पगडण्डियों में लगे हैं वकुल पुष्प कहीं-कहीं।
एक रात आकर एक अज्ञात फूल
फैला गया शरीर में निज सुगन्ध धूल।
प्रातः का समय आया
अनादर भरी मुस्कान लाया
समझता ही नहीं वह मेघों की अरुणाई कुछ
उन्नत शाखों के सिरों पर
खिले हैं रोडोडेण्ड्रन गुच्छ।
धन का नहीं कोई कोष है
ममत्व का नहीं कुछ होश है।
निकटतम वृक्ष पर चिड़ियाँ नचाता है दुम,
कोई पकड़ता है नहीं यद्यपि मूंछें न रखते हो तुम।
उड़ती फिरे है प्रियतमा
आकाश में पंख फैलाये
मुक्ति-प्रिया ने इस तरह राग मुक्ति के सुनाये।

पिछले जीवन के इतिहास को भी अवलोकन कर लेना ही उत्तम है, ताकि आगे के प्रसंग में कोई बाधा ही उत्पन्न न हो सके।

३.

योगमाया

आधुनिक शिक्षा के प्रति लोगों ने अनेकों विरोध किये। धीरे-धीरे जब शिक्षा पद्धति स्त्री शिक्षा पर भी लागू होने लगी, तो मानो तूफान आगया। बंगाल में भी आधुनिक शिक्षा की ओर जब स्त्री जाति का झुकाव प्रारम्भ हुआ तो वहाँ भी विरोध की भावना भड़क उठी। ज्ञानशङ्कर बाबू स्त्री शिक्षा के पक्ष में थे। यद्यपि जिस युग में उन्होंने जन्म लिया था, वह रूढ़िवादियों का युग था; किन्तु उनको इसकी चिन्ता न थी। उन्होंने स्त्री शिक्षा के प्रचार में दिलचस्पी ली, यद्यपि उनको कड़ा विरोध सहना पड़ा, किन्तु उन्होंने धैर्य को हाथ से न जाने दिया। उन्हें इसमें रस मिलता था। उनका हृदय भविष्य की कल्पना से फूल जाता था।

समय की गति के अनुसार ज्ञानशङ्कर बाबू काल कवलित हुये। उनके नाती वरदाशङ्कर का युग आया। वरदाशङ्कर की मति अपने बाबा से विपरीत ही थी। वह रूढ़िवादी संस्कारों में विश्वास रखते और स्त्री शिक्षा के कट्टर विरोधी थे। यद्यपि इस समय तक युग काफी बढ़ चुका था, फिर भी वह अपने घर में सदियों पहली रूढ़िवादी आस्था को कायम रखना चाहते थे। वह देवी, देवताओं को मानते थे, शीतला, मनसा की पूजा करते। अपने मन की शान्ति के लिये तावीजों को घोर करँ पीते। दिन का अधिकांश भाग एक हजार आठ बार 'दुर्गा' नाम लिखते बिता देते। यदि कभी कोई नीची जाति ब्राह्मणत्व की ओर बढ़ने की हिम्मत करली तो धर्म-युद्ध का ऐलान कर देते। ब्राह्मणों को एकत्रित करते, शास्त्रार्थ करने का प्रस्ताव करते और लम्बे-लम्बे भाषण छपवा कर अपने शत्रुओं को परास्त करने की चेष्टा करते, दान, धर्म,

यज्ञ, जप, तप में जी खोलकर धन खर्च करते। अपनी सत्ताईस वर्ष की आयु तक उन्होंने धर्म का अच्छी तरह प्रतिपालन किया और विविध प्रकार से ब्राह्मणों को प्रसन्न करके अनेकों आशीर्वाद प्राप्त किये। धर्म और आशीर्वाद उन्हें काल के गाल से न बचा सके। इस अल्प आयु में ही उन्हें मृत्यु को अंगीकार करना पड़ा।

वरदाशङ्कर की स्त्री योगमाया, उनके पिता के मित्र रामलोचन बनर्जी की कन्या थी। जिस समय योगमाया का विवाह हुआ था, उस समय तक रामलोचन बनर्जी के यहाँ स्त्री शिक्षा का प्रचलन नहीं था। धीरे-धीरे समय बीतने पर उनके घर की लड़कियाँ शिक्षा की ओर बढ़ने लगीं। उन्होंने पर्दा छोड़ दिया था और यदा-कदा अपने भ्रमणों का विस्तृत वृतांत भी मासिक पत्रिकाओं में प्रकाशित करा चुकी थीं। वरदाशङ्कर इस परिवर्तन से प्रसन्न न थे। जब तक वह जीवित रहे उन्होंने सर्वदा योगमाया पर नजर रखी। उन्हें आशंका थी कि कहीं वह भी अपने घराने की अन्य लड़कियों की भाँति न हो जाये। पठन-पाठन की ओर वह विशेष ध्यान देते रहते थे। अंग्रेजी की पुस्तक अन्तःपुर की ड्योढ़ी पर जब्त हो जाती। बंकिम-युग या उनके बाद का साहित्य उनके घर से नहीं जा सकता था। इसका यह आशय नहीं कि वरदाशङ्कर योगमाया को पुस्तकों से वंचित रखना चाहते थे। रामायण, महाभारत, योग-वशिष्ठ आदि धार्मिक पुस्तकों के बंगला अनुवाद की बढ़िया जिल्ददार पुस्तकें योगमाया की आलमारी में भरी पड़ी थीं। यद्यपि योगमाया ने कभी उन पुस्तकों को खोलकर पढ़ने की चेष्टा नहीं की थी, किन्तु फिर भी वरदाशङ्कर को आशा थी, एक न एक दिन योगमाया का ध्यान उन पुस्तकों की ओर अवश्य ही आकर्षित होगा और वह उन धार्मिक ग्रंथों का पठन-पाठन करके उन पर टीका-टिप्पणी करने के योग्य हो जायेगी।

योगमाया को उन पुस्तकों में कोई रुचि न थी। वह संसार को जागृति की ओर जाते देख कर स्वयम् भी जागृति में भाग लेना चाहती थी। उसकी आत्मा विद्रोह करने पर उतारू थी, परन्तु उसने धीरज से काम लिया। अपने मन को शान्त किया और हृदय के धधकते हुये विद्रोह को हृदय में ही दबा रखा। समय २ पर उसे पं० दीनशरण, वेदान्तरत्न से इस विषय में सहायता

मिलती रही। पं० दीनशरण इस घराने के सभा पण्डित थे। उनका अन्तःपुर में आना जाना था। योगमाया की विकसित बुद्धि ने उन्हें काफी प्रभावित किया। कभी २ वह कहा करते—"बेटी, इस तरह की रूढ़िवादी प्रथायें तुम्हारी जैसी विकसित बुद्धि वाली को नहीं शोभा देतीं। यह तो उन मूर्खाओं के मन को शान्ति दे सकती हैं जो अपने आपको स्वयम् ठगती हैं। संसार छल है, माया है, और यह शास्त्र और पुराण समाज के वह अस्त्र हैं जो उस छल को यथा-सम्भव सहायता पहुँचाते रहते हैं। अगर सत्य पूछा जाये तो समाज ने धर्म शास्त्रों का दुरुपयोग ही किया है। शास्त्रों का अर्थ उन्होंने अपने दृष्टिकोण के अनुसार ही लगाया है। दूसरों को भुलावे में डालने के इस प्रपंच को देखकर मुझे घृणा होती है। मेरी हार्दिक इच्छा है कि मैं समाज के इस प्रपंच का पर्दा फाश कर दूँ। जब भी तुम्हें आवश्यकता हो मुझे बुलवा लेना। जो बात तुम समझना चाहोगी उसका सही अर्थ मैं बता जाऊँगा।"

कभी २ वह स्वयम् ही आकर योगमाया को "श्रीमद्भागवत गीता" और "ब्रह्मभाष्य" को समझाते, उनका सत्य रूप दिखाते, योगमाया की शंकाओं का समाधान करते। उसके तर्कों को सुनकर पण्डित जी बहुत प्रसन्न होते और कह बैठते—"बेटी, तमाम बस्ती में केवल तुम्हारी बातें सुनकर ही मेरा हृदय आनन्द से भर जाता है। मैं तुम्हारे मन की सच्ची भावनाओं को जान कर प्रसन्न होता हूँ। देखता हूँ कि तुमने सत्य को पा लिया है। तुम समाज की ठगाई से बच निकली हो।"

पति के नियंत्रण में रहकर योगमाया को पति के साथ विभिन्न प्रकार के व्रत, जप, तप आदि धार्मिक कर्म करने ही पड़े। पति के साथ उसका जीवन भी बीतता रहा, उसी क्रम से जिस क्रम में वरदाशंकर चाहते थे। अन्त में एक दिन वरदाशंकर ने इस असार संसार से विदा ली।

वरदाशंकर की मृत्यु के समय योगमाया के दो सन्तानें थीं। पुत्र यति-शंकर अभी कालिज में शिक्षा प्राप्त कर रहा था। पुत्री सुरमा को पढ़ाने लायक उन्हें कोई विद्यालय पसन्द नहीं आया अतः उन्होंने उसकी पढ़ाई की व्यवस्था घर पर करने की इच्छा से एक अध्यापिका का प्रबन्ध कर दिया था। जाड़ों में योगमाया कलकत्ते रहती थी और गर्मियों में अपनी पुत्री सुरमा और उसकी

अध्यापिका के साथ किसी पहाड़ी स्थान पर चली जाती थी। लावण्य लता, जिससे अकस्मात् पहाड़ी ढाल पर अमित की भेंट हुई थी, सुरमा की अध्यापिका थी, जो योगमाया और सुरमा के साथ इन दिनों गर्मी काटने शिलांग आयी हुयी थी।

—o—

४.

लावण्य लता

अवनीशदत्त पश्चिमी बंगाल के एक कालिज में प्रिंसीपल थे। लावण्य उनकी एक मात्र सन्तान थी। उसकी माता उसे बहुत छोटी अवस्था में ही छोड़कर स्वर्ग सिधार चुकी थीं। अतः लावण्य की देख रेख का भार अवनीश बाबू के कंधों पर आ पड़ा था। उन्होंने उसकी शिक्षा-दीक्षा की स्वयम् ही देख-रेख की और शायद उसका ही परिणाम था कि लावण्य का विद्या के प्रति प्रारम्भ से ही विशेष अनुराग रहा। आयु के साथ २ उसका यह अनुराग बढ़ता ही गया। जब वह युवा हुई तो उसका अनुराग विद्या के प्रति अति प्रबल हो चुका था।

अपनी समस्त आयु का अधिक भाग विद्योपार्जन में व्यतीत करने के कारण अवनीश बाबू विद्या को सबसे अधिक महत्व देते थे। उनका कहना था कि पशु भी ज्ञान प्राप्त करके मनुष्यत्व प्राप्त कर सकता है। ज्ञान मनुष्य के समस्त विकारों का नाश करके उसे ठोस मनुष्यत्व प्रदान करता है। ज्ञान प्राप्ति के बाद हृदय निर्मल हो जाता है। उसमें कोई दरार नहीं रहती। ज्ञान प्राप्ति के बाद प्राणी को विवाह की आवश्यकता ही नहीं रहती। यही तमाम बातें उन्होंने अपनी पुत्री के मस्तिष्क में भरने की चेष्टा की। लावण्य ने पिता के दिये हुये मंत्र को ग्रहण किया। सहज नारी स्वभाव के कारण उसके हृदय में पति प्राप्ति के लिये जो कुछ भी कमी रह गयी थी वह गणित और इतिहास के अध्ययन से पूर्ण हो गयी। विवाह के प्रति लावण्य को कभी अनुराग ही न हुआ। यह देख कर पिता ने सन्तोष की सांस ली। मन ही मन विचारा कि

यदि लावण्य का विवाह न हुआ तो न सही, ज्ञान के साथ उसका ऐसा गठ-बंधन हो गया है कि वह कभी इस कमी को महसूस ही न करेगी ।

शोभनलाल एक गरीब विद्यार्थी था । छात्रवृत्तियों के सहारे ही बेचारा अपनी शिक्षा का भार उठाये था । उसका भी विद्या के प्रति प्रबल अनुराग था । उसके कारण ही अविनाश बाबू उससे स्नेह करने लगे थे । शोभनलाल देखने में सुन्दर था । उसका प्रशस्त माथा, बड़ी २ आँखें, सौजन्यता पूर्ण मुस्कुराहट, सरल चितवन और सुकुमार शरीर किसी का ध्यान आकर्षित करने के लिये काफ़ी थे । किन्तु वह लजीला बहुत था । किसी को भी अपनी ओर ताकता देख उसका चहरा परेशानी के भाव प्रगट करने लगता था ।

इन सब बातों के बावजूद भी अविनाश बाबू को विश्वास था कि एक न एक दिन शोभनलाल अवश्य ख्याति प्राप्त करेगा । उसका भविष्य उज्ज्वल बनाने में अविनाश को भी लोग सराहेंगे, यही सोचकर उन्होंने उसे अपने घर पर सहायता देने की व्यवस्था कर दी थी । अविनाश बाबू की निजी एक सुन्दर लाइब्रेरी थी जिससे शोभनलाल को पढ़ाई में यथेष्ट सहायता मिलती रहती थी और यदाकदा वह अविनाश बाबू से भी अपनी कठिनाइयाँ हल करने में सहा-यता ले लिया करता था ।

शोभनलाल और लावण्य एक ही कक्षा में पढ़ते थे । फिर भी शोभन-लाल में इतना साहस नहीं था जो आँख उठाकर लावण्य को देख सके । वह उसे देखकर संकोच के मारे गढ़ जाता था और उसके सामने आँख नहीं उठा पाता था । शायद यही कारण था कि लावण्य शोभनलाल को अपने से हीन ही समझती थी । उसके प्रति उसके हृदय में कोई स्थान नहीं था । प्रकृति का भी यही नियम है कि स्त्रियाँ पुरुषत्व को प्यार करती हैं । शोभनलाल की भाव भंगिमा में पुरुषत्व का नितान्त अभाव था ।

मन ही मन शोभनलाल लावण्य के रूप और गुणों से मुग्ध होकर उस पर मोहित हो चुका था । वह उसकी मन ही मन आराधना करता, प्रेम करता किन्तु सामना होते ही उसकी निगाहें ऊपर उठने का साहस ही नहीं कर पाती थीं । इस बात का पता तब चला जब एक दिन शोभनलाल के पिता अवनी-गोपाल, लाल पीले होकर अवनीश बाबू के घर आये । उन्होंने क्रोध में आकर

अनेकों ऊँची-नीची बातें अवनीश बाबू को सुना डालीं। उन्होंने स्पष्ट शब्दों में यह कहा कि अवनीश बाबू शोभनलाल को अपने जाल में फँसाकर लावण्य का विवाह उसके साथ करना चाहते हैं ताकि सुन्दर पढ़ा-लिखा योग्य लड़का उनको कौड़ियों में मिल जाये।। अपनी इस शिकायत के प्रमाण में उन्होंने लावण्य का एक रेखा-चित्र भी प्रस्तुत किया, जो उन्हें शोभनलाल के सन्दूक में नीचे की ओर पुष्पों से लदा हुआ मिला था। नवनीगोपाल के हृदय में यह बात जम चुकी थी कि यह रेखा-चित्र अवश्य ही लावण्य ने अपने प्रेम स्वरूप शोभनलाल को दिया था। लावण्य भी शोभनलाल से प्रेम करती है, यह उनकी कल्पना ही थी।

इतने सुन्दर पुत्र को कौन पिता इस तरह कौड़ियों के भाव जाते देख सकता है? नवनीगोपाल जानते थे कि इस समय उनका पुत्र विद्या प्राप्त कर चुका है। दहेज के बाजार में वे उसके लिये हजारों रुपये वसूल कर सकते हैं। इस तरह बैठे-बिठाये वह नुकसान नहीं करना चाहते थे। इन्हीं तमाम विचार धाराओं में बह कर उन्होंने अवनीश बाबू और उनकी पुत्री को खूब खरी-खोटी सुनाई और शोभनलाल को अपने साथ लेकर चले गये। जाते समय शोभनलाल की आँखों में आँसू थे, किन्तु उनका रहस्य किसी को ज्ञात नहीं था।

लावण्य को शोभनलाल के इस प्रेम का कोई पता तक नहीं था। उसने कभी कोई फोटो उसको नहीं दी थी। फोटो देने का प्रश्न ही न उठता था, क्योंकि शोभनलाल में इतनी क्षमता तो थी ही नहीं कि वह लावण्य के सम्मुख मुख खोलने का साहस तो कर सके। असल बात यह थी कि एक दिन लाइब्रेरी के ही एक कोने में रद्दी कागजों के बीच शोभनलाल को लावण्य का एक तिरस्कृत चित्र मिल गया था। उसको वह अपने साथ ले गया। अपने किसी चित्रकार मित्र से उसने उसका एक रेखा-चित्र बनवा लिया था। फोटो उसने पुनः यथा स्थान लाकर रख दी थी। अपने हृदय के उमड़ते हुये प्रेम की शान्ति के लिये उसने उस चित्र को अपने सन्दूक के नीचे रख दिया और उस पर गुलाब के फूल चढ़ाकर अपने दग्ध हृदय को शान्त करने के लिये प्रेम परिचय अवश्य देने की धृष्टता की थी। इस अपराध का भण्डा उसके पिता ने आज अवनीश बाबू के घर फोड़ा था। उसके कारण अवनीश बाबू और लावण्य

को भी बुरी-भली बातें सुननी पड़ी थीं। इसी बात को सोचकर उसका हृदय विदीर्ण हो रहा था और उसके नेत्रों से जल बरस रहा था। यह राज था, जो न अवनीश बाबू जानते थे और न उनकी पुत्री लावण्य।

बी० ए० की परीक्षा में शोभनलाल और लावण्य एक ही साथ प्रविष्ट हुये। अपनी महनत और भाग्य के बल पर शोभनलाल ने प्रथम स्थान प्राप्त किया। लावण्य का स्थान तृतीय रहा। इस बात का लावण्य को बड़ा दुःख था। पहली बार इस अवसर पर लावण्य ने अपने को शोभनलाल से हीन समझा। जब मनुष्य का किसी परिस्थिति पर कोई वश नहीं चलता तो वह अपना संयम खो बैठता है। वही दशा लावण्य की हुई। वह शोभनलाल पर झल्ला उठी। इसके साथ ही उसे अपने पिता अवनीश पर क्रोध आया। नवनीगोपाल के इतने कहने सुनने के बाद भी अवनीश बाबू शोभनलाल को अपने हृदय से भुला न सके। उनका हाथ सदैव की भाँति शोभनलाल के कंधे पर रहा। जो कुछ भी हो सका उन्होंने उसकी यथेष्ट सहायता की। उसी का परिणाम था कि शोभनलाल को प्रथम स्थान मिला। लावण्य ने प्राण पण से परीक्षा में शोभनलाल से उच्च स्थान प्राप्त करने के लिये महनत की थी। शोभनलाल का हृदय टूट गया था। उसे आशा नहीं थी कि वह किसी भी तरह उससे अधिक नम्बर प्राप्त कर सकेगा। फिर भी वह विजयी हुआ। स्वयम् अविनाश बाबू भी परीक्षा-फल देखकर दंग रह गये।

उसके बाद उन लोगों की पढ़ाई छूट गई। अविनाश बाबू बहुत दिनों तक सख्त बीमार रहे। अनुभवों से ही मनुष्य को ज्ञान होता है। इस लम्बी बीमारी से अविनाश बाबू को भी ज्ञान हुआ। उन्होंने मन ही मन सोचा, केवल ज्ञान का सहारा लेकर जीना कठिन है। ज्ञान अलग वस्तु है और वह जीवन क्रम से कोई सम्बन्ध नहीं रख सकती। ज्ञान से मस्तिष्क को शान्ति मिल सकती है। ज्ञान के बल पर काम को नहीं हराया जा सकता। यद्यपि अविनाश बाबू की अवस्था सैंतालीस के लगभग हो चुकी थी, फिर भी उन्होंने अपने इन अनुभवों के आधार पर विवाह करने की सोची। उनके मन में द्वन्द्व चला। अन्त में उन्होंने तय कर लिया। हृदय को समझा लिया। अब केवल एक बाधा शेष थी, जिसका कोई हल वह न निकाल सके। वह थी लावण्य! बहुत

बाधा शेष थी जिसका कोई हल वह न निकाल सके, वह थी लावण्य। बहुत कुछ विचारने पर भी जब उनको इस व्यथा से कोई छुटकारा मिलता नज़र नहीं आया तो वह सोच में पड़ गये। परन्तु हृदय की लगी हुई शान्त ज्वाला को दबाना सहज कार्य न था। उनका मन काम से उचाट हो गया। पढ़ने-लिखने में उनका मन न लगता। उनके सम्पर्क में रहने वाले लोग उनकी मानसिक उत्तेजना को देखकर सहम गये, परन्तु चारा ही क्या था? उनकी दशा इस समय उस हाथी के समान हो गई थी जो दलदल में आकर स्वयम् ही अपने आपको फँसा लेता है। उसके बचाव का उपाय रहता ही कहाँ है? तब अवनीश को अपने ऊपर स्वयम् ही क्रोध आया। वह सोचने लगे कि वास्तव में उन्होंने स्वयम् ही मूर्खता की है। अगर वह ज्ञान के भ्रम में न रहते और लावण्य को विवाह सूत्र में बाँध देते तो आज उनके सामने यह कठिनाई हरगिज नहीं आती। उन्हें याद आया कि शोभनलाल और लावण्य अवश्य ही एक दूसरे को प्रेम करते होंगे? फिर उन्हें अपने ऊपर इसलिये क्रोध आया कि उनमें पुत्री की भावनाओं को समझने की शक्ति भी नहीं? नवनीगोपाल पर इसलिये क्रोध आया कि उसने जान-बूझ कर भी इस बुरी तरह, इस बात को समाप्त किया कि कहीं कहने सुनने की भी गुञ्जायश नहीं रही। अगर वह धैर्य के साथ सही स्थिति बतलाता तो वह अवश्य ही उसे मुँह माँगा दहेज देकर लावण्य की शादी शोभनलाल के साथ कर देते। मगर यह सब बातें अब इतनी व्यर्थ थीं कि उन पर अधिक विचार करना मूर्खता के अतिरिक्त और कुछ नहीं था। जितना उन्होंने इस गुत्थी को सुलझाने की चेष्टा की वह उतनी अधिक जटिल होती चली गई।

शोभनलाल 'प्रेमचन्द रामचन्द' छात्रवृत्ति प्राप्त करने के लिये गुप्त-राजवंश के इतिहास पर एक 'थीसिस' लिखकर भेजना चाहता था। किन्तु लाख चेष्टा करने पर भी उसे उचित पुस्तकें प्राप्त न हो सकीं। उसे ज्ञात था कि इस प्रकार की उचित पुस्तकें अविनाश बाबू की लाइब्रेरी में हैं। अतः उसने एक विनम्र पत्र लिखकर कुछ दिनों लाइब्रेरी की पुस्तकों की सहायता लेने की आज्ञा चाही। अविनाश बाबू खुले दिल से विद्यादान के अभ्यस्त थे। उन्होंने तुरन्त स्वीकृति दे दी। स्वीकृति पाते ही शोभनलाल का हृदय प्रसन्नता

से नाच उठा। उसने सोचा अवश्य ही इस स्वीकृति में लावण्य का हाथ रहा होगा। अतीत का प्रेम फिर हरा होगा। प्रसन्न होकर वह पुनः लाइब्रेरी में आकर अपना कार्य करने लगा। अक्सर निकलते बैठते लावण्य से आमना-सामना हो जाता। जान-बूझ कर शोभनलाल ठिठक जाता। वह सोचता शायद लावण्य उससे कुछ कहेगी, किन्तु ऐसा कभी नहीं हुआ। उसकी अभिलाषा पूर्ण न हो सकी। लावण्य ने उसके प्रति कभी अपनी कोई जिज्ञासा प्रगट नहीं की। कभी उससे बोली तक नहीं। शोभनलाल में इतनी हिम्मत ही कहाँ थी, जो स्वयम् वह लावण्य से बात करने का साहस करता।

दिन बीतते चले गये। एक दिन रविवार के दिन दोपहर के समय अविनाश बाबू अपने किसी मित्र के पास चले गये थे, शाम तक न लौटने की भी कह गये थे। शोभनलाल लाइब्रेरी में बैठा पुस्तकें देख रहा था। जहाँ उसके काम की बात मिलती वह तुरन्त नोट कर लेता। यह उसका रोज का क्रम था।

यकायक लाइब्रेरी का दरवाजा खोलकर लावण्य कमरे में आई। उसको इस तरह आता देख शोभनलाल सकपका कर उठ बैठा। सूने मकान में लावण्य का सामना करने की शक्ति उसमें न थी। सकते की सी दशा में खड़ा रहा। अचानक लावण्य ने क्रुद्ध स्वर में उससे पूछा—"आप मेरे मकान में फिर क्यों आते हैं?"

शोभनलाल निरुत्तर रहा।

उसको शान्त देखकर लावण्य ने फिर कहा—"आप मुझे क्यों अपमानित कराने पर तुले हैं। अभी कुछ ही दिन पहले आपके पिता ने मुझे क्या कुछ नहीं कहा? आपको मुझे इस तरह अपमानित कराने में लाज नहीं आती? मैंने आपका क्या बिगाड़ा है?"

शोभनलाल पर मानो लाखों घड़े पानी पड़ गया। उसे अपनी गलती महसूस हुई। आँखें नीची करके उसने दबे हुये स्वर में अपराधी की भाँति कहा—"मुझे क्षमा कीजिये। मैं अब कभी नहीं आऊँगा।"

उसने टूटे हुये हृदय से अपने तमाम कागज पत्र एकत्रित किये। उसके हाथ-पैर मानो कांप रहे हों। उसके हृदय की धड़कन बढ़ गई थी। चेहरे पर मुर्दनी छा गई। आँखों के सामने अँधेरा छा रहा था। उसकी दशा बड़ी दयनीय

हो चली। शराबी की भाँति लड़खड़ाते हुये पग रखता हुआ और अपने कागजों के बंडल को बगल में दबाये वह उस लाइब्रेरी से निकलकर चला गया और फिर कभी उस मकान में नहीं आया।

यह बात सत्य है कि लावण्य भी शोभनलाल को प्रेम करती थी। यद्यपि उसने कभी इस बात को जाहिर नहीं किया था मगर वह अपनी कल्पनाओं में हमेशा उसे अपने प्रेमी के रूप में देखती रहती थी। नारी का आभूषण लज्जा है। लावण्य भी लज्जा के कारण कभी प्रगट रूप से शोभनलाल पर अपना प्रेम प्रगट न कर सकी। इसमें कसूर शोभनलाल का ही था। क्योंकि उसने स्वयम् कभी लावण्य के प्रेम को नहीं पहचाना और न कभी पहचानने की चेष्टा ही की। प्रेम से ठुकराई हुई स्त्री कितनी भयानक हो सकती है इसकी चर्चा इतिहास में अनेकों स्थानों पर हो चुकी है। प्रेम में बाधा पड़ती देख वह क्रुद्ध हो जाती है, नागिन की भाँति फुफकारने लगती है, फिर वह अपना अच्छा बुरा नहीं सोचती। जो जी में आता है करती है। वही दशा लावण्य की थी। नवनी गोपाल ने उसे अपमानित करने में कोई कोर कसर उठा न रखी। शोभनलाल कायर निकला। और तो और उसमें इतनी भी हिम्मत न निकली कि वह एक बार प्रेम प्रदर्शित करके लावण्य को अपने हृदय के उद्गार निकालने का मौका तो देता। लाचार होकर उसे अपने उद्गारों को अपने ही हृदय में दबाकर रखना पड़ा।

प्रेम तो अग्नि है। एक बार सुलग जाने के बाद उसका बुझना कठिन हो जाता है। लावण्य ने जैसे तैसे पहली बार अपनी इस अग्नि को दबाकर रखा। किन्तु दूसरी बार जब शोभनलाल का आना जाना पुनः प्रारम्भ हो गया तो पिछला घाव पुनः हरा हो गया। उसने चार छः दिन तो यह राह देखी कि शायद शोभनलाल अपनी पहली गलती की माफ़ी माँग ले। मगर जब इस बार भी उसने देखा कि शोभनलाल में पहले की सी ही भीरुता है तो वह क्रुद्ध हो गयी। जिन भावनाओं को वह अब तक छिपाये थी वह बरबस ही निकल पड़ीं। जो कुछ उसने कहा और किया उसकी स्पष्ट झलक थी। मन ही मन उसने यह भी सोचा कि शायद उसके पिता अवनीश बाबू ने ही शोभनलाल को पुनः बुलाया है ताकि वह दोनों मेल कर लें और इस बार उसका विवाह उससे

हो जाये। वह जानती थी कि उसके पिता एक विधवा से विवाह करना चाहते हैं और ऐसा करने से पहले वह उसके उत्तरदायित्व से मुक्ति पा जाना चाहते हैं।

शोभनलाल का तिरस्कार करके लावण्य का मन शान्त नहीं हुआ। वह किसी भी कीमत पर अपने पिता के मार्ग में बाधा बनना नहीं चाहती थी। अतः उसने अविनाश बाबू के पीछे पड़कर उन्हें विवाह करने पर मजबूर कर ही दिया। विवाह कर लेने के बाद अविनाश बाबू ने चाहा कि वह अपने संचित धन में से आधा धन लावण्य को दे दें। किन्तु लावण्य ने धन लेने से कतई इन्कार कर दिया। उसने दृढ़ होकर कहा—"मैं धन लेकर अपने जीवन को अकर्मण्यता की शृङ्खलाओं में बांधना नहीं चाहती। मैं स्वाधीन रह कर धनोपार्जन करूंगी और अपना जीवन आराम से काट लूंगी।"

उसके इस उत्तर से अविनाश बाबू का हृदय विदीर्ण हो गया। उन्होंने कहा—"प्रकृति का नियम है कि पिता सदैव पुत्री को देता आया है। मैं तुम्हें कुछ भी न दे सका और जो कुछ देना चाहता हूँ वह तुम स्वीकार भी नहीं करतीं। मैंने इस विवाह को करने से इन्कार कर दिया था किन्तु तुमने ही ज़िद करके मुझे इस बंधन में बांधा है। इस तरह शायद तुमने पहले ही से मुझे त्यागने का कार्य क्रम बना रखा था ऐसा मुझे भास होता है। तुम किसलिये मुझे त्याग रही हो?"

लावण्य बोली—"धन ही संसार में वह वस्तु है जो अपने को पराया बना देता है। मैं अगर आपकी सम्पति में से अपना भाग लूंगी तो हो सकता है कि आपके हृदय में मेरे प्रति वह प्रेम न रह सके जिसकी मुझे आवश्यकता है। मैं आपके धन के बदले आपके प्रेम को अधिक महत्व देती हूँ। उसी में मुझे वास्तविक सुख मिलेगा। ऐसी मेरी भावना है। आज मैं इस योग्य हो चुकी हूँ जो स्वयम् अपने ही पैरों पर खड़ी हो सकूँ। आपका आशीर्वाद मेरे जीवन पथ को अधिक सुगम बना सकेगा ऐसी मुझे आशा है।"

सुरमा को पढ़ाने का काम उसे मिल गया। यद्यपि वह इस योग्य थी कि यतिशंकर को भी पढ़ा सके किन्तु यतिशंकर शायद स्त्री द्वारा विद्यालाभ करने में पुरुषों की हेठी समझता था। वह कालिज चला गया। योगमाया लावण्य को पाकर बहुत प्रसन्न थी। वह उसके गुणों पर मुग्ध थी।

लावण्य सुरमा को दीक्षा देती और जो भी समय उसके पास शेष रहता उसे अपने पठन पाठन में बिताती। देश विदेश का साहित्य पढ़ती हुई ज्ञान लाभ करती रहती।

नारी प्रेम की प्रतिमा है। प्रेम वह तृष्णा है जिसकी भूख नारी को युगों से रही है। लावण्य भिन्न न थी। युवती होते ही उसके हृदय में भी प्रेम हिलोरें मारने लगा। उसने शोभनलाल को चाहा। परिस्थितियों के वश वह उसे खो बैठी। इसका उसे दुख था। लाख भूलना चाहा। किताबी दुनियाँ में फँस कर उसने प्रेम से दूर भागने की चेष्टायें भी कीं मगर सब व्यर्थ ही रहा। हृदय की उथल पुथल पर वह काबू पाना चाहती थी मगर असफल रही। खैर जैसे भी हो सका वह हृदय के उद्‌गारों को रोके रही। अपने जीवन के दिन काट ही रही थी।

अचानक उसके मार्ग में आ टपका अमित—उसी तरह जैसे हवा के झोंके से उड़कर सूखा पत्ता आ गिरता है। वह आगा पीछा सोच भी न सकी। उसे इतना सोचने का समय मिला ही कहां? जिस व्यथा को वह बड़ी साव-धानी से अपने ज्ञान की चादर में लपेटे छिपाये थी सहसा खुल गयी। उसकी अतीत की स्मृतियाँ हरी हो गयीं। अमित के प्रति आकर्षण हुआ। अपना अस्तित्व भी उसने जाना। उसकी संज्ञा भी लौटी। नारी हृदय का नारित्व जाग पड़ा।

सब कुछ हुआ मगर सब में एक वेदना थी, कसक थी। यह स्वाभाविक ही थी। टूटे हुये हृदय में शेष रहता ही क्या है? रहती है केवल एक कसक, एक टीस, एक वेदना। वही तो अतीत की स्मृति होती है। उससे बचने का कोई चारा नहीं। हो भी कैसे सकता है? अगर उसका चारा ही हो तो वेदना का अस्तित्व ही शेष हो जाये। उसे वेदना कहा ही क्यों जाये? ऐसा लोगों का मत है।

५.

परिचय

नियत समय पर अमित आया। लावण्य ने उसका इस प्रकार स्वागत किया मानो वर्षों से वह उसकी प्रतीक्षा में हो। अपने कमरे में उसे बिठा कर वह योगमाया को खबर देने चली गयी। लावण्य के चले जाने के बाद अमित उसके कमरे में अकेला रह गया तो उसने समय काटने के लिये लावण्य की मेज़ पर बिखरी हुई पुस्तकों को देखा। लावण्य का कमरा पुस्तकों से भरा था। विभिन्न प्रकार का साहित्य था। जिस प्रकार के साहित्य में अमित को रुचि थी उन पुस्तकों को लावण्य के कमरे में देख वह अति प्रसन्न हुआ। उसे अपना अतीत याद आने लगा। मेज़ पर पड़ी हुई अंग्रेज कवि डॉन की कविता की पुस्तक को उसने उठा लिया। पन्ने पलटने लगा। आक्सफ़ोर्ड में पढ़ते समय अमित ने डॉन की कविताओं को पढ़ा था, पसन्द किया था और उसका उपासक भी बन गया था।

इस तरह लावण्य की रुचि अपनी रुचि के ही अनुकूल देखकर उसका कौतुक जागा। हृदय प्रसन्नता से नाचने लगा। सोचने लगा कि यहाँ की समस्त वस्तुयें उसकी चिर परिचित हैं। उनसे उसका लगाव रहा है। समय की अवधि ने उसके हृदय पर अन्धकार का जो पर्दा डाल दिया था वह सहज ही अदृश्य हो गया। मन हल्का होकर नाना कल्पनायें करता हुआ ऊपर की ओर उड़ने लगा। उसके हृदय में आनन्द सागर तरंगें मारने लगा। मन में आता कि वह प्रसन्नता के मद में गाना प्रारम्भ कर दे। समय, काल और स्थिति के ज्ञान ने उसे ऐसा करने से रोक दिया। खैर जो कुछ भी रहा हो, यह अवश्य हुआ कि अमित को लावण्य से परिचय प्राप्त करके बड़ी प्रसन्नता हुयी। कुछ दिन पहले शिलांग आने के लिये जितना दुःखी था आज उतना ही प्रसन्न हो उठा।

लावण्य को साथ लिये योगमाया कमरे में आयी। योगमाया को देख कर अमित प्रसन्न हुआ। उसने देखा योगमाया चालीस वर्ष से अधिक आयु की हैं किन्तु उनके चहरे पर उसका कोई लक्षण नहीं। एक विचित्र चमक है। गोल भरा हुआ चहरा है, रंग गोरा है, वैधव्य के कारण अलकें माथे पर

छितरी हुई पड़ी हैं। आंखों में मातृत्व की स्पष्ट झलक है । उससे मुस्कराहट फूटी निकलती है। शरीर पर सफेद साड़ी पहने हैं और उसके ऊपर एक सफेद चादर से अपना समस्त तन छिपाये हुये हैं। पैरों में जूते न होने के कारण उनकी स्वच्छता और निर्मलता को सहज ही देखा जा सकता है । मातृत्व की भावना से प्रेरित होकर अमित ने शीघ्र ही झुककर उनके चरणों का स्पर्श किया तो उसका समस्त अंग पुलकायमान हो उठा। उसे ऐसा प्रतीत हुआ कि आज बिना माँगे उसे अपने जीवन की चिर-इच्छित वस्तु सहज ही प्राप्त हो गयी। अमित अपने भाग्य पर स्वयम् ही गर्व करने लगा।

योगमाया ने बातचीत में शीघ्र ही अमित का परिचय प्राप्त कर लिया। फिर बोली—"तुम्हारे काका अमरेश बाबू हमारे जिले के बड़े वकीलों में थे। हमारे परिवार के साथ उनका विशेष स्नेह था । मुझे तो वह सदा भाभी कह कर ही पुकारा करते थे। एक बार एक मुकद्दमे में उन्होंने हमें राह का भिखारी होने से बचाया था। उनका वह अहसान हम कभी नहीं भूल सकते । कितनी आत्मीयता थी उनमें ?"

अमित ने सहज स्वभाव से कहा—"ठीक ही तो है। चाचाजी ने आपको नुकसान से बचाया और मैंने हानि करके ही आपका परिचय प्राप्त करने का सौभाग्य पाया। आखिर हूँ उनका ही अयोग्य भतीजा। आप उनकी भाभी थीं, किन्तु मेरी तो मौसी ही हैं।"

योगमाया ने प्रश्न किया—" तुम्हारी माँ जीवित हैं ?"

अमित बोला—"थी तो सही, मगर अब कहाँ ? इसी कारण तो मौसी की चाह हृदय में लिये हूँ।"

योगमाया बोली—"बेटा ! मौसी को पाने के लिये तुम इतने अधीर क्यों हो ?"

अमित ने सफाई देते हुये कहा—"माँ सन्तान के प्रति कठोर हो सकती है, सन्तान के अपराध पर खीज उठती है, दंड भी देती है, किन्तु मौसी—केवल प्रेम करती है, वह दंड नहीं देती। अपराध हो जाने पर भी शान्त ही रहती है और उल्टे दुलार करती है कि कहीं सहम कर बालक के हृदय पर आघात न पहुँचे। अब आप ही बताइये कि माँ के सामने मोटर की टक्कर होती तो वह

क्या नुकसान देखकर मुझे डाटतीं नहीं ? बरस पड़तीं और जो जी में आता सुनातीं। जब मौसी की मोटर का नुकसान हुआ तो वह मेरी नालायकी पर मुस्करा पड़ीं। मन ही मन सोच बैठीं, लड़कपन है।"

योगमाया अमित की दलीलें सुनकर मुस्कराने लगी और बोली—"तेरे हृदय पर मैं आघात नहीं करूँगी। तू नुकसानी मोटर को मौसी की ही समझ सकता है।"

योगमाया की इस बात पर अमित उछल पड़ा। उसको इतनी प्रसन्नता हुई मानो मुँह माँगा वरदान ही मिल गया हो। लपक कर उसने फिर योगमाया के चरणों का स्पर्श किया और बोला—"पूर्व जन्म के संस्कारों और कर्म-फल को मानना ही पड़ता है। माँ की कोख से मैंने जन्म पाया, मगर मौसी प्राप्त करने के लिये मुझे कुछ भी नहीं करना पड़ा। यह कर्म-फल नहीं तो और क्या है ? यद्यपि किसी की गाड़ी से टकरा जाना सत्कर्म नहीं कहा जा सकता, किन्तु विधि का विधान भी कितना विचित्र है ? काम किया था मार खाने का मगर भाग्य ने युग-युगों की साध मिटा दी। अपराध करने पर भी मौसी प्राप्त हुई। यह कर्म-फल नहीं तो और क्या है ? आप ही बताइये ?"

अमित की बात पर योगमाया मुस्करा दी। बोली—"कर्मफल तो यह मोटर मरम्मत करने वालों का हो सकता है, जो सहज ही मरम्मत करने के लिये उन्हें एक मोटर प्राप्त हो सकी। तुम्हारा कर्मफल कैसे हुआ ?"

अमित संकट में पड़ गया। बालों को सुलझाते हुये उसने कहा—"आपका प्रश्न बहुत कठिन है। इतना मैं स्वीकार किये लेता हूँ कि यह कर्म-फल मेरे अकेले का नहीं, समस्त विश्व का ही है। समस्त नक्षत्रों के सहयोग ही से शायद शुक्रवार को ठीक नौ बजकर अड़तालीस मिनट पर मोटरों की टक्कर हुई। उसके बाद··· ··· ?"

योगमाया ने लावण्य की ओर कनखियों से देखा और मुस्करा दीं। दोनों के हृदयों की भाषायें वह पढ़ चुकी थीं। एक दूसरे के प्रति आकर्षण उनके अनुभवी नेत्रों से छिपा न रहा। अमित के साथ बातचीत करते हुये ही उन्होंने मन ही मन उन दोनों को 'एक्य-सूत्र' में बाँध देने की बात तय कर ली थी। वह उन दोनों के विवाह से सम्मत थीं। अपने इन्हीं विचारों की प्रेरणा

से वह बोलीं—"बेटा, मैं तुम्हारे खाने का प्रबन्ध करती हूँ, तब तक तुम लावण्य के साथ बात करो।"

इतना कह कर उन दोनों को कमरे में अकेला छोड़कर योगमाया चली गईं।

स्त्रियों से बातें करना अमित को खूब आता है। वह जरा भी नहीं झेंपता और अपने मन के भाव उनके सामने प्रस्तुत करने में तो मानो वह दक्ष है। मौसी के जाते ही तपाक से उसने लावण्य को मुखातिब करते हुये कहा—"मौसी जी ने हम दोनों को बातें करने की छूट दे दी। अच्छा तो बातें शुरू की जायें। बातें प्रारम्भ करने से पहले नाम को पहचान लेना ठीक होता है। आप मेरा नाम तो जान ही चुकी हैं। वही नाम जिसे अंग्रेजी व्याकरण में 'प्रौपर नाउन' कहते हैं?"

लावण्य मुस्करा कर बोली—"जी हाँ! आपको लोग अमित बाबू कहते हैं?"

अमित ने तड़फकर कहा—"यह नाम हर क्षेत्र में चालू नहीं। यह बात आप शायद नहीं जानतीं?"

हँस कर लावण्य ने कहा—"विभिन्न क्षेत्रों के लिये विभिन्न नाम धारण किये जायें, यह बात मैंने कभी नहीं सोची है। क्षेत्र के साथ अधिकारी के नाम भी परिवर्तन होने चाहिये? यह उपहास नहीं तो और क्या है?"

अमित ने कहा—"जमाना बहुत आगे बढ़ चुका है। आप हैं कि अभी पुरानी लकीर ही पीट रही हैं। विज्ञान का युग है। परिवर्तनों की बाढ़ है। ऐसे समय में अगर देश, काल, पात्र में जब भी भेद होता है, तभी नाम भी परिवर्तन हो जाता है। यदि ऐसा नहीं होता तो शायद 'रिलेटिव नाउन' शब्द की आवश्यकता ही न पड़ती। मेरा तो निश्चय है कि मैं इस युग में 'रिलेटिव नेम्स' के आधार पर ही ख्याति प्राप्त करूँ। इसीलिये आपको पहले ही जताये देता हूँ कि आपके लिये मेरा नाम अमित बाबू नहीं है?"

लावण्य ने उत्तर दिया—"क्षमा कीजिये, भूल हो गई। मैं यह बात तो भूल ही गई कि आपने विदेशों में शिक्षा ग्रहण करने के साथ ही साथ

विदेशी कायदों को भी अपना लिया है। मैं आपको उसी कायदे के अनुसार मिस्टर राय कह कर पुकारती रहूँगी।"

अमित ने कहा—"विदेश से मुझे विशेष लगाव नहीं। देश में रह कर विदेशी परम्परा को निभाने में मुझे प्रसन्नता नहीं होती। नाम का महत्व तब ही होता है जब वह कान में तेजी के साथ प्रवेश कर सके। उसकी गति तेज हो।"

लावण्य ने आश्चर्य से कहा—"नामों की भी रफ्तार होती है? आपका तेज रफ्तार वाला नाम भी तो सुनूं?"

अमित बोला—"किसी भी वस्तु की रफ्तार तेज करने का बहुत ही सरल उपाय है। बोझ घटा दिया जाय तो रफ्तार स्वयम् ही तेज हो जाती है। अमित बाबू में से "बाबू" को निकाल कर देखिये। आपको स्वयम् ही पता चल जायेगा।"

लावण्य ने अमित की बात का तात्पर्य समझा, सोचा। विचार करके बोली—"ऐसा करने में समय लगेगा। इतनी आसानी से यह काम नहीं हो सकेगा।"

अमित ने तर्क करते हुये कहा—"हर बात के लिये समान समय नहीं लगता। कुछ बातें अति शीघ्रता से होती हैं। ऐसा तो कभी नहीं देखा गया कि जेब घड़ी की चाल घंटाघर की चाल से भिन्न हो। आप जानना चाहें तो इस बात को आइन्स्टाइन ने प्रमाणित कर दिया है।"

लावण्य अधिक तर्क में फंसना नहीं चाहती थी। वह इससे अधिक आगे बढ़ने को तैयार न थी। बातों का रुख बदलने के लिये वह उठ खड़ी हुई और बोली—"मैं तो भूल ही गयी, आपके नहाने का पानी रखा जा चुका है। देर की तो वह ठंडा हो जायेगा।"

अमित बोला—"अगर तुम मुझे बातें करने की इजाजत दो तो मुझे ठंडे पानी की कोई शिकायत नहीं होगी।"

"बातों के लिये अब समय नहीं दिया जा सकता।" इतना कह कर लावण्य कमरे से निकल कर चली गयी।

लावण्य के जाने के बाद भी अमित लावण्य के विषय में सोचता रहा। उसकी सरलता, माधुर्य, और मुस्कुराहट की बात सोच २ कर उसका हृदय आनन्द विभोर हो उठा। अमित ने अनेकों सुन्दर युवतियों को देखा था, उनसे बातें की थीं; उनके साथ हास-परिहास भी किया था। किन्तु लावण्य उन सबसे भिन्न थी। उनका पूर्ण सौन्दर्य पूर्णिमा की शुभ्र चांदनी की भाँति उज्ज्वल होते हुये भी उसे प्रभावित न कर सका। उसे उनके प्रति आकर्षण नहीं हुआ। लावण्य का सौन्दर्य उसके हृदय में घर कर गया। अमित को लावण्य पसन्द आयी। आकर्षित हुआ। उसके हृदय को तृप्ति हुई। यही सब अमित के लिये काफ़ी था।

६.

नव परिचित

अमित सामाजिक जीव है, मनुष्यों में रह कर जीवन-यापन करने में उसे आनन्द आता है। उसे बोलने की आदत है। बोलता भी अधिक है। ऐसे प्राणी को प्रकृति के रसास्वादन में कैसे शान्ति मिल सकती है? प्रकृति सुन्दर है। उसकी सुन्दरता का रस पान मूक हृदय से ही किया जा सकता है। पेड़, पत्तों, पहाड़ों, झरनों आदि के साथ किसी भी प्रकार का उल्टा व्यवहार नहीं किया जा सकता। प्रकृति के नियम हैं। चराचर में केवल मनुष्य को छोड़कर सब उन्हीं नियमों का पालन करते हैं। चेतन तो चेतन, जड़ भी नियमों का उलङ्घन सहन नहीं कर सकते। अगर कभी उनके साथ कोई नियम भंग करने की धृष्टता भी करता है तो वह उसे उसका उचित दण्ड दिये बिना नहीं चूकते। फिर ऐसी स्थिति में अमित प्रकृति के सहयोग में किस तरह अपने दिन गुजार सकता है। यही कारण है वह जब से शिलांग आया था उसका हृदय क्षुब्ध हो गया। उसके जीवन का रस जाता रहा। भाग्य की बात कहिये जो उसकी लावण्य से मुला-

कात हो गयी। वह योगमाया के घर जाकर अपने लिये स्थान बनाने में समर्थ हो सका।

इतने दिनों से जिस कारण उसके जीवन में उदासी आ गयी थी आज सहसा लावण्य के प्रवेश करते ही दूर हो गयी। जीवन को चेतना मिली। उसने नवीन स्फूर्ति का अनुभव किया।

कितने ही दिनों बाद वह उषा के साथ जागा। उसने खिड़की खोलकर सूर्य को निकलते देखा। फुर्ती से उसने चाय पी और कपड़े पहन कर घर से बाहर चल दिया। वन में पहुंच कर वह एक पेड़ के नीचे बैठ गया। जेब से सिगरेट निकाल कर सुलगायी, शून्य की ओर ताकता रहा। स्वयम् ही अपनी सुधि-बुध खो बैठा।

उसके घर से योगमाया के निवास स्थान तक जाने के लिये रास्ते में जंगल पड़ता है। आवश्यकता से अधिक जल्दी आ जाने के कारण उसे नियत समय के इन्तजार में इसी जंगल के किसी पेड़ के नीचे बैठे रहने की आदत सी हो गयी है। उसके जीवन का क्रम ही बदल गया है। अधिक से अधिक वह लावण्य के समीप रह सके, यही उसकी चेष्टा है। इसी कारण उसने अपने ही आप यतीशंकर को एक घंटा सुबह और दो घंटे शाम को अंग्रेजी पढ़ाने का जिम्मा ले लिया। सुबह आठ बजे वह पहुँचता, जाते ही चाय पीता, यती-शङ्कर को पढ़ाने के बहाने दोपहर का समय कर लेता। योगमाया उसे वहीं खाना खा लेने का आग्रह करती जिसे वह ठुकरा न पाता। दोपहरी उनके घर ही काट देता और सन्ध्या को फिर पढ़ाने के बहाने जमा रहता। बहुत रात बीते ही घर लौटता। घर लौटता आराम करने के लिये, किन्तु सोते समय भी उसे जल्दी उठने की बात न भूलती। वह समय के पहले ही उठ जाता और समय के पहले ही योगमाया के घर की ओर प्रस्थान करता। किन्तु जब उसे वन में पहुँच कर स्वयम् अपनी उतावली पर खीज होती तो वह पेड़ के नीचे बैठकर नियत समय तक इन्तजार करता। यही उसका कार्यक्रम था जिसने उसे इतना व्यस्त बना रखा था।

वह जानता था कि योगमाया की उस पर अति कृपा है। वह अधिक से अधिक उसे लावण्य से मिलने के अवसर देती रहतीं, अक्सर घर से बाहर

चली जातीं ताकि उनके बीच कोई रोक न रहे। वह उनके दिलों में उमड़ते हुये तूफानों को जानती और जहाँ तक हो सकता उनकी सहायता करने की चेष्टा करती। यद्यपि वह संसार के हर पहलू को समझती थीं। हर बात का उन्हें ज्ञान था। सब कुछ जानते हुये भी वह अनजान रहना चाहती थीं। यह उनका वात्सल्य नहीं तो और क्या था? अमित उनसे प्रभावित था। उनके कोमल हृदय को जानता था। उनका ऋणी था, उनकी श्रद्धा करता था। इसी कारण सदैव सचेत रहता और अपने किसी भी कार्य से उनके हृदय को दुःख पहुँचाना नहीं चाहता था। यही कारण था कि वह नियत समय से पहले घर से तो चल पड़ता मगर रास्ते में पेड़ के नीचे इन्तजार की घड़ियाँ काट कर नियत समय ही योगमाया के घर पहुँचता।

इसी तरह वह, एक दिन, इन्तजार कर रहा था। रह २ कर घड़ी देखता। सोचता कहीं घड़ी बन्द तो नहीं हो गयी, उसे कान से लगाता। किन्तु जब उसे विश्वास हो जाता कि घड़ी ठीक ही चल रही है तो आह खींच कर बैठ जाता और शून्य की ओर ताकता।

यकायक उसने देखा सामने से अपने हाथ की छतरी को इधर उधर हवा में हिलाती हुयी लावण्य चली आ रही है। उसके शरीर पर सफेद साड़ी थी। कंधों पर काले रंग का दुशाल तिकोना हुआ पड़ा था जिसमें लगी हुई काले रंग की झालर इधर उधर हवा में लहरा रही थी। एक ही झलक में अमित ने उसे पहचान लिया। मोड़ के घुमावदार मार्ग पर होकर वह दूसरी ओर जाने का उपक्रम कर रही थी कि दौड़ता हुआ अमित उसके पास जा पहुंचा।

हाँफते हुये अमित ने कहा—"जान पूछ कर तुमने आज मुझे दौड़ा ही लिया न? यह तो जानती ही हो कि मैं तुम से दूर नहीं रह सकता। आखिर भाग कर आना ही पड़ा।"

लावण्य बोला—"मैं पास आने को तो नहीं कहती।"

अमित ने कहा—"तुम क्या कहती हो, यह मैं तुम्हें बताना नहीं चाहता। असल बात तो यह है कि मैं तुम्हें पुकार भी तो नहीं सकता।"

लावण्य ने पूछा—"क्यों?"

अमित बोला—"पुकारूँ भी तो क्या कह कर? अभी तक तुमने अपना

नाम भी तो नहीं बताया। तुम लोगों से अच्छी तो पत्थर की मूर्तियाँ है। सहस्त्र बार 'दुर्गा' नाम से पुकारने पर प्रसन्न हो जाती हैं। हैरानी तो यही है कि आजकल की स्त्रियां किस नाम से प्रसन्न होती हैं ? और किस से अप्रसन्न ? यह बात सोचने की शक्ति मुझ में आज तक न आ सकी।"

लावण्य ने मुस्करा कर कहा—"इन तमाम बातों का छोटा सा उत्तर है कि पुकारा ही क्यों जाय ? न पुकारा जाये और न परेशानी ही हो।"

अमित ने कहा—"जब पास रहती हो तो पुकारने की आवश्यकता ही नहीं होती। मगर जब दूर हो जाती हो तो पुकारने के लिये नाम ज्ञात होना ही चाहिये। चाहता तो यहीं हूँ कि तुम मुझसे दूर न जाओ किन्तु......।"

लावण्य ने कहा—"प्रगतिवादी समाज में रहकर भी तुम विलायती ढंग से सम्बोधन नहीं कर सकते ?"

अमित बोला—"चाय की मेज पर ही बैठकर मुझे मिस डाट के नाम से पुकारना अच्छा लगता है। प्रकृति के इस प्रांगण में तुम जैसी सुन्दर नारी को उस नाम से पुकारने की धृष्टता मुझ में नहीं।"

लावण्य बात टालने की इच्छा से बोली—"खैर नामकरण किसी और समय भी हो सकता है। मेरी इच्छा इस समय टहलने की है। पहले टहल आया जाये तो अच्छा रहे।"

पालतू कुत्ते की भांति अमित उसके साथ हो लिया। चलते २ बोला—"चलना सीखने में मनुष्य को देर लगती है, मगर मेरे साथ कुछ उलटी ही बात है। यहां आकर तो मैं बैठना सीख गया हूँ। देखती नहीं आज किस समय से यहाँ बैठा हुआ हूँ। शायद इसी कारण उषा की किरण आज देखने में समर्थ हो सका हूँ।"

लावण्य ने उसके शब्दों को समझा। किन्तु बात दबाने की इच्छा से सामने बैठी एक चिड़िया की ओर इशारा करते हुये बोली—"उस हरे रंग की सुन्दर चिड़िया का नाम जानते हो ?"

अमित ने कहा—"सृष्टि में जनम लेने के कारण इतना तो जानता था कि सृष्टि में चिड़ियां भी हैं। कभी उनके बारे में विशेष रूप से ज्ञान प्राप्त करने

का मौका ही न मिल सका। यहाँ आकर ही ज्ञान कर सका हूँ कि चिड़ियां भी विभिन्न प्रकार की होती हैं। कुछ तो ऐसी हैं जो गाते भी गाती हैं।"

लावण्य उसकी बात पर मुस्करा कर बोली—"यह तो तुम्हारी आश्चर्य-जनक खोज है।"

अमित ने कहा—"मेरी खोज पर आपको हँसी आती है। यह शायद मेरी किस्मत का ही दोष है। कुण्डली में पड़े ग्रहों का ही प्रभाव है।"

लावण्य ने उत्तर दिया—"आपकी अटपटी बातों पर किसे हँसी नहीं आती? अगर चिड़िया भी आपकी बात सुनती तो वह बिना हँसे न रहती।"

अमित बोला—"मेरी बातें अटपटी इसलिये लगती हैं कि सहसा लोग उनको समझ नहीं पाते। अगर समझ पायें तो उन पर गम्भीरता से सोचें। मैंने आज नई तरह की चिड़ियों को जाना है, इसमें हँसने का कोई कारण नहीं। यह मेरी खोज है। इस खोज के साथ ही मैंने भी अपने को नये रूप में पाया हैं। मेरी इस बात में कितना सत्य है यह तुम्हारी चुप्पी बता रही है।"

लावण्य ने मुस्करा कर कहा—"जहां तक मैं समझती हूँ आप अति प्राचीन युग के आदमी नहीं हैं। इसी नवीन युग के हैं। फिर आपको नवीनता के प्रति इतना आकर्षण क्यों है?"

अमित गम्भीर होकर बोला—"इसके उत्तर में मुझे कुछ गम्भीर बात कहनी पड़ रही है। नवीनता का मुझे जो शौक है वह आज की नहीं पुरानी बात है। पुरानी भी उसी तरह जिस तरह उषा। नित्य प्रति उषा को देखते रहने पर भी सदा उसमें नवीनता का एक रूप दिखाई देता है।"

लावण्य अमित की बात सुनकर शान्त हो गयी। उत्तर में केवल मुस्करा भर दी।

अमित लावण्य को चुप रहने नहीं देना चाहता था। वह फिर बोला—"तुम्हारी हँसी अपना विशेष महत्व रखती है। यह पहरेदार की लालटेन के समान है जो चोर पकड़ते समय स्तैमाल की जाती है। आप से मेरी यही प्रार्थना है कि इस तरह हँसकर आप मुझे कहीं दागी चोर करार न दे दें? कभी २ तो मन की दशा ही और की और हो जाती है। मन ही मन ज्ञान का सागर उबल पड़ता है। ऐसे समय मैं अपने भावों में इतना खो जाता हूँकि जो कुछ भी कहता

हूँ और सोचता हूँ उसका अपना विशेष अस्तित्व होता है। मन के भावों को जब शब्द व्यक्त करता हूँ तो ज्ञात होता हैं कि वह लाइन मैंने किसी साहित्यिक पुस्तक में कभी पढ़ी है। यह सच है अथवा भ्रम इसका पता मैं नहीं लगा सका। आज प्रातः मैंने ही स्वयम् अपने भावों को शब्दों में परिणित किया तो सोचने लगा कि वह लाइन कभी कहीं पढ़ी है।"

लावण्य का कौतूहल बढ़ा। पूछ बैठी—"जरा मैं भी सुनूं आपकी वह लाइन ?"

अमित ने लाइन सुनाई—

"For Gods sake, hold your tongue and let me love !"

अमित की लाइन सुनकर लावण्य का कलेजा काँपा। इस तरह अमित अपने प्रेम का प्रदर्शन कर सकेगा यह बात उसने कभी नहीं सोची थी।

थोड़ी देर तक दोनों शान्त रहे।

बहुत देर बाद अमित बोला—"क्या आप बता सकती हैं यह लाइन किसकी है ?"

लावण्य ने सिर हिलाकर सम्मति प्रगट की।

अमित ने स्वयम् ही कहा—"सबसे पहले दिन मैंने आपके कमरे में बैठे २ आपकी टेबिल पर कवि डान् की एक पुस्तक ईजाद कर डाली थी। वरना यह लाइन शायद मेरे दिमाग़ में कभी न आती।"

लावण्य बोली—"कवि डान् की पुस्तक ईजाद करने का मतलब मैं नहीं समझी।"

अमित बोला—"ईजाद नहीं तो और क्या ? आपकी मेज पर तमाम पुस्तकों का ढेर है। उसमें से किसी वस्तु को खोज निकालना क्या ईजाद से कम है ? शायद यह उसी ईजाद का फल है जो आज प्रातः मेरे भाव मेरे ही अपने शब्दों में इतनी स्पष्टता से व्यक्त हो सकें—

"राम की तुमको शपथ है,
मूक हो जाओ प्रिये।

अब प्यार करने दो हमें,
हैं जिसलिये अब तक जिये ।।"

लावण्य बोली—"अच्छा तो आजकल अब कविता भी करने लगे हैं ?"

अमित बोला—"अब तक तो नहीं करता था मगर डर है कि कहीं प्रारम्भ न करना पड़े ? कविता क्षेत्र में नवीन अमितराय क्या कर गुजरे उसका इस पुराने अमित को कोई पता नहीं । सम्भव है वह लड़ाई कर दे ।"

लावण्य ने पूछा—"किससे ?"

अमित बोला—"अभी यह निर्णय नहीं हुआ है । अनेकों बार ध्यान में आया है कि किसी भी अच्छी बात के लिये आँख मींच कर प्राण दे देने चाहिये । अन्त में पश्चाताप करता भी पड़ा तो वह धीरे २ हो सकता है ।"

लावण्य फ़िर मुस्करा कर बोली—"प्राण देना ही ठाना है तो सोच समझ कर दें ।"

अमित बोला—"अगर प्राण देने की बात आ पड़ेगी तो उसके लिये भी मेरा अपना प्लान है । मैं किसी दंगे फिसाद में नहीं पड़ूंगा । उलझूंगा भी तो उस बूढ़े आदमी से जिसके चहरे से अहिंसा और धर्म के भाव स्पष्ट होते होंगे । जब वह मोटर पर जा रहा होगा तो सामने से रास्ता रोक कर युद्ध की भिक्षा मांगूंगा । इस तरह के प्राणी अक्सर पहाड़ों पर मोटरों में हवा खाने निकलते हैं ।"

लावण्य बोली—"अगर आपकी बात को वह सुनी अनसुनी करके चला जाये तो ?"

अमित बोला—"तो क्या ? पीछे से हाथ उठा कर उच्च स्वर में कह दूँगा 'जा क्षमा कर दिया' ! जब आदमी बड़प्पन प्राप्त कर लेता है तब ही वह युद्ध भी कर सकता है और क्षमा भी !"

लावण्य बोली—"आपका युद्ध का प्रस्ताव सुनकर सच ही मैं तो डर गयी थी । लेकिन क्षमा की बात ने मुझे आश्वस्त कर दिया ।"

अमित ने कहा—"लेकिन एक बात को ध्यान में रखे रहिये ।"

लावण्य ने पूछा—"वह क्या है ?"

अमित बोला—"टहलने से अधिक भूख लगती है। शायद आपने आवश्यकता से अधिक वायु सेवन कर लिया है।"

लावण्य बोली—"तो लौटा जाये ?"

अमित ने कहा—"अभी नहीं। थक गयी होगी। अगर सामने वाली उस छोटी झील के किनारे कुछ देर बैठा जाये तो कैसा रहे ?"

लावण्य ने घड़ी की ओर देखकर कहा—"लेकिन घर लौटने में थोड़ा ही समय शेष है।"

अमित बोला—"यदि तुम्हारी तरह संसार के समस्त प्राणी घड़ी देख कर ही जीवन बिताने की चेष्टा करें तो शायद उनके जीवन का आनन्द ही जाता रहे।"

लावण्य ने तर्क करना उचित नहीं समझा। दबे हुये स्वर में बोली—"आपकी इच्छा है तो चलिये।"

सामने वाली सरोवर के किनारे दोनों जाकर बैठ गये। अमित ने शान्ति भंग करते हुये कहा—"घर की चहारदीवारी में मुँह से बोलते समय सदैव यह ध्यान रखना पड़ता है कि कहीं कोई ऐसी बात मुँह से न निकल जाये जिसे मौसी जी या कोई और अभद्र मान ले। मगर हम तुम यहाँ अकेले ही हैं। भद्र, अभद्र का उतना डर नहीं। कहिये आपको क्या सुनाऊँ। कविता ही अकेले में मजा देती है। आज्ञा हो तो कहूँ ?"

लावण्य ने कहा "कहिये।"

अमित फिर बोला—"आपको रवीन्द्र बाबू की कविता अच्छी लगती हैं ?"

लावण्य ने कहा—"उनकी कविता अच्छी होती हैं।"

अमित बोला—"हो सकता है आपका कहना ही सच हो। मगर सच तो यह है कि मुझे उनकी कविता में कोई आनन्द नहीं आता। यह मैं जानता हूँ मेरा यह कहना आप लोगों को अच्छा नहीं लगता होगा। पर क्या करूँ; बिना कहे रहा भी तो नहीं जाता ? मेरी पसन्द के एक और कवि हैं। उनकी कवितायें इतनी अच्छी हैं कि उनको पढ़ने वाले पाठक बहुत कम हैं और सम्मान देने की बात तो दूर रही कोई समालोचना में दो चार खरी खोटी भी सुनाना

पसन्द नहीं करता। अगर आपकी आज्ञा हो तो अपने उन प्रिय कवि की कविता का आपको रसा-स्वादन कराऊँ ?"

लावण्य बोली—"उनकी कविता सुनाने के लिये इतनी लम्बी-चौड़ी भूमिका की आवश्यकता तो मैं नहीं समझती।"

अमित बोला—"दूध का जला छाछ को फूंक-फूंक कर ही पीता है। कविन्द्र, रवीन्द्र की निंदा करने से आप लोग रुष्ट हो जाती हैं। यदि कोई चुपचाप मना लेने का प्रयास करे तो आप लोगों की वाणी में न जाने कहाँ से ओज आ जाता है ? कड़ाई आ जाती है, जिसका कुछ कहना ही नहीं ? जबर-दस्ती दूसरे को अच्छा लगवाने के लिये खून-खराबी की नौबत आ पहुँचती है। मैं इन तमाम बातों से बचने के लिये तो पहले ही से इस तरह की भूमिका कह देना अधिक आवश्यक समझता हूँ।"

लावण्य ने कहा—"विश्वास रखिये, इस प्रकार की खून-खराबी की मेरी आदत नहीं। अपनी रुचि के लिये मैं आपकी रुचि को मजबूर नहीं करूँगी।"

अमित बोला—"फिर क्या है ? अब मैं निडर होकर आपको सुना दूँ, सुनिये !—

हे अपरिचित हाथ वाले,
ये हाथ अब मेरे हवाले।
कैसे इनको छुड़ायेगा बता,
मुझको मिले न जब तक तेरा पता ?

क्यों आपने इसके भावों पर विचार किया ? अपरिचित संसार में बंदी बना हुआ हूँ और मेरी मुक्ति तब ही हो सकती है, जब मुझे इसका पूर्ण पता लग जायेगा। इसी का नाम तो मुक्तित्व है।

किस अँधेरी रात में,
तन्द्रित नेत्रों के सुप्रभात में।
रात बीती प्रभात आया,
मैंने देखी तेरी छाया।

आँखों में आँखें डाल कर है प्रश्न मेरा,
अपने को भुलाकर छिपाने का है कौन स्थान तेरा ?

अपने आप को विस्मृत करते रहने का तेरा कौन-सा ऐसा स्थान है जहाँ से तुझे ढूँढ़ना कठिन है। वैसे तो संसार में अनेकों दर्शनीय पदार्थ हैं, किन्तु वे सब छिपे हुये हैं, उन्हें देख नहीं पाया हूँ। यद्यपि मैं उनको देखने में समर्थ न हो सका, किन्तु मैं निराश होकर पतवार छोड़ने वाला जीव नहीं हूँ।

परिचय तुम्हारा और हमारा,
हो सकेगा न सुखारा।
चाहे सुनाऊँ गीत मैं,
आकर तुम्हारे कान में।
इस सशंकित तेरी व्यकुल वाणी पर,
होगी मेरी ही विजय।
लाऊँगा तुझको लाज, शंका, दुविधा
की कीच से खींज
प्रकाश में ओ निर्दय।

इन पंक्तियों में देखा तुमने, कवि अपने विचार प्रगट करता है कि मैं तुझे कदापि इस तरह छोड़कर बैठने वाला नहीं। देखा शक्ति को तुमने ?

तू जाग्रत हो जायेगी अपनी ही अश्रुधार से,
परिचित बनेगी स्वयम् ही अपने जीवन सार से।
टूट जायेंगे बन्धन सारे इक साथ,
होयगी मुक्ति तेरी भी, मेरी मुक्ति के साथ।

इस प्रकार की भावना आपको इन प्रशंसा प्राप्त लेखकों में मिलने की नहीं है। इन भावों को तुम उसी प्रकार समझो जिस प्रकार सूर्य-मण्डल में अग्नि का तूफान होता है। यह भाव केवल इस लिरिक 'Lyric' के ही नहीं वरन् इस निर्दयी जीवन का तत्व है।

इतना कह कर उसने लावण्य के चहरे की ओर देखा और फिर कहा—

"हे अपरिचित मीत तू पास आजा आज मेरे,
जा रहे हैं बीतते यह सभी सन्ध्या सबेरे।

तोड़ दे सारे बन्धन आज
मिटा दे बाधाओं का राज
मिटा है जीवन का भय, हुआ मैं निर्भय,
जला कर मन में आग मुझे देजा निज परिचय,
बलि दे उसमें जीवन अपना,
पूर्ण होगा मेरा सपना।"

कविता कहते २ आवेश में आकर अमित ने लावण्य का हाथ पकड़ कर अपने हाथ में ले लिया। लावण्य ने अपना हाथ छुड़ाने की तनिक भी चेष्टा नहीं की। वह केवल शान्त भाव से अमित के चहरे को निहारती रही। दोनों शांत रहे। कहने सुनने की आवश्यकता ही शेष न थी। लावण्य यह भी भूल गई कि घर लौटने में देर हो सकती है।

७.

घटकई

अमित प्रसन्नचित्त योगमाया के समीप पहुँचा और बोला—"मौसीजी, घटकई करने आया हूँ। आशा है विदा में आप कंजूसी नहीं करेंगी।"

योगमाया हँस कर बोली—"न नाम बताया न गाम! अभी वादा कैसे करदूँ। पहले विवरण तो सुनूँ। रही विदा की बात सो पसन्द आने पर ही सोचूँगी।"

अमित बोला—"क्या नाम से वर की कीमत आंकी जा सकती है? मेरे विचार से तो यह असम्भव है।"

मौसी बोली—"तब तो विदा में कमी करनी ही पड़ेगी।"

अमित बोला—"आपका यह निर्णय न्यायसंगत नहीं रहा। जिसका नाम बड़ा होता है वह नाम की खातिर घर से बाहर के प्रपंचों ही में फंसा रहता है। वधू के हिस्से में उसका कम से कम समय ही आ पाता है।"

मौसी बोली—"तो ले बाबा, तेरी ही बात मान लेती हूँ। नाम अगर बड़ा नहीं तो न सही मगर रूप ?"

अमित ने कहा—"रूप का वर्णन करते समय कहीं बहक न जाऊँ, यही डर है।"

मौसी बोली—"अब समझी, रूप के बल पर ही अच्छी कीमत की बात सोचते हो।"

अमित बोला—"नहीं मौसी, मेरा तो मत है कि वर का चुनाव करते समय केवल दो बातों का ध्यान रखना ही लाभदायक है। वर कहीं नाम के जोर पर घर से और रूप के बल पर वधू से, आगे न बढ़ जाये।"

मौसी ने पूछा—"नाम और रूप के अलावा ?"

अमित बोला—"इन दो वस्तुओं को अगर वर में से निकाल दिया जाता है, तो शेष रहता है उसका मनुष्यत्व ! सो मनुष्य तो वह है।"

मौसी ने पूछा—"विद्या ?"

अमित ने कहा—"सो तो वह अज्ञानी नहीं।"

मौसी ने मुस्कराते हुये कहा—"ज्ञात होता है कि वर के गुणों की तालिका विशेष लम्बी नहीं।"

अमित बोला—"क्या कहती हो, मौसी ? पुराणों को भी भूलती हो। क्या यह बात जगद्विख्यात नहीं कि अन्नपूर्णा की मान-रक्षा के लिये भगवान् शङ्कर को भी भिखारी बनकर भीख माँगनी पड़ी थी"

मौसी ने कहा—"अगर ऐसा है तो परिचय अधिक स्पष्ट करो।"

अमित ने कहा—"वर आपके सम्मुख बैठा है। जैसा भी है, आपसे छिपा हुआ नहीं है। आप इसे मजाक न समझें ?"

मौसी बोली—"मजाक समझने वाली तो कोई बात नहीं। लेकिन डरती हूँ कि कहीं अन्त में यह मजाक ही न रह जाये ?"

अमित बोला—"आप इसका मुझ पर पूर्ण भरोसा रख सकती हैं।"

मौसी ने कहा—"बेटा, गृहस्थी के झंझटों में पड़ना जरा टेढ़ी खीर ही है। अगर तनिक भी सावधानी बरती जाये तो भार हल्का रह सकता है। लेकिन यह तो बताओ, क्या वास्तव में तुम्हें मेरी लावण्य से अनुराग है ?"

अमित बोला—"अगर आप परीक्षा चाहें तो ले सकती हैं।"

मौसी ने गम्भीर होकर कहा—"परीक्षा तो इतनी ही काफी है कि तुम लावण्य को पहचान सको। कहावत है कि आसानी से सस्ते दामों में मिले हुये हीरे की कदर सच्चा जौहरी ही कर सकता है।"

अमित ने कहा—"मौसी, ज्ञात होता है आपको मेरी बातों का विश्वास नहीं रहा। बात तो स्पष्ट ही है कि मुझे लावण्य से प्रेम है। शायद मैं भी अयोग्य नहीं। लावण्य का तो कहना ही क्या है? इतना बात सुनते ही साधारण मौसियाँ तो प्रसन्नता में फूल कर लड्डुओं का मेह बरसाने लगतीं।"

मौसी ने विहँस कर कहा—"चिन्तित होने की आवश्यकता नहीं है। समझ लो तुम लावण्य को पा चुके हो। अब पाने के बाद भी अगर उसे पुनः पाना चाहते हो तो तुमसे अच्छा वर लावण्य को मिल ही कहाँ सकेगा?"

अमित बोला—"मौसी, आपकी आज की बातों से स्पष्ट होने लगा है कि आपके विचारों में आधुनिकता का पुट आ गया है।"

मौसी ने हँस कर पूछा—"मैंने कौन-सी आधुनिक बात की है?"

अमित ने कहा—"मैं देख रहा हूँ कि इस जागृति के युग में आप लड़कियों के विवाह करने में इतनी सतर्कता से काम ले रही हैं।"

मौसी ने स्पष्ट कहा—"प्राचीन युग में विवाह खिलवाड़ मात्र जो था। गुड्डे, गुड़ियों की भाँति ही लड़कियों और लड़कों के विवाह हो जाया करते थे। वह परिपाटी मुझे पसन्द नहीं थी। मैं विवाह से पहले यह जानना चाहती हूँ कि दोनों में विवाह के बोझ को उठाने लायक क्षमता है अथवा नहीं? मुझे तो अब तक ऐसा भास होता रहा कि विवाह की जिम्मेदारी उठाने लायक क्षमता का तुममें नितान्त अभाव है। भय इस बात का है कि कहीं भविष्य में मेरे द्वारा किया हुआ विवाह गुड्डे, गुड़ियों के खेल में न परिवर्तित हो जाये।"

अमित ने दृढ़ता से कहा—"मौसी, मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि आप मुझ पर भरोसा रखें।"

अमित की बात सुनकर योगमाया भोजन की व्यवस्था देखने चली गईं। अमित, यतिशंकर के कमरे में आया। यतिशंकर आज छुट्टी मनाना चाहता था। उसने विनम्र होकर कहा—"अमित दादा, आज मैं अपर शिलांग की सैर

के लिए जाना चाहता हूँ। क्या मुझे आज आप पढ़ाई से मुक्ति देने की कृपा करेंगे ?"

अमित ने कहा—"मैं मास्टर बुद्धि का प्राणी नहीं हूँ। जब तुम छुट्टी मनाना चाहते हो तो अवश्य मनाओ।" इसी विषय को लेकर उसने अपना लम्बा चौड़ा भाषण यतीशंकर को दे डाला।

यतीशंकर चला गया। उसके जाने के बाद अमित फिर अकेला रह गया। यही सोचकर कि कुछ देर बगीचे में ही हवा खोरी कर ली जाये वह घर से बाहर निकल आया। बरामदे में खड़े २ उसने देखा कि बगीचे के एक पेड़ के नीचे घास में बैठी लावण्य अपनी झोली में रखी हुयी वस्तुयें छोटे २ जीवों को चुगाने में मस्त थी। लावण्य के पास जाकर कुछ देर वक्त काटने के इरादे से वह उस ओर चल दिया।

अमित ने सिर उठाकर उसे देखा मगर बोली कुछ नहीं। अमित घास पर ही लावण्य के पास बैठता हुआ बोला—"तुम्हारे लिये एक शुभ संवाद लाया हूँ।"

लावण्य ने मौन रह कर ही प्रश्नसूचक नजर डाली। अमित स्वयम् ही बोला—"मौसी ने हमारे तुम्हारे विवाह की सम्मति दे दी है।"

उसकी बात सुनकर भी लावण्य शान्त ही रही। बोली कुछ नहीं। निरन्तर शान्त मुद्रा में बैठी २ अपनी झोली में से मेवा के दाने उठा २ कर गिलहरियों को डालती रही।

अमित ने बात चलाते हुये कहा—"अगर तुम स्वीकार करो तो तुम्हारे नाम का कुछ बोझ हल्का कर दूँ।"

लावण्य ने कहा—"तुम्हारी इच्छा में मैं बाधा देना नहीं चाहती।"

अमित बोला—"अगर तुम स्वीकार करो तो मैं तुम्हें 'बण्य' कहा करूँ।"

लावण्य ने दोहराया—"बण्य।"

अमित अपने आप बोला—"नहीं। तुम्हारा यह नाम तो काफी प्रचलित है। मैं तो तुम्हें केवल 'वन्या' कहा करूँगा।"

लावण्य ने कहा—"अगर तुम्हें यह कहने में प्रसन्नता होती है तो मुझे

कोई एतराज नहीं। एक बात अवश्य ध्यान रखना मौसी जी के सामने इस नाम से कभी मत पुकारना।"

अमित बोला—"यह नाम तो मेरे मुँह से तुम्हारे कानों तक ही सीमित रहेगा। इसे मैं औरों पर प्रगट करना नहीं चाहूँगा।"

लावण्य ने चैन की सांस लेकर कहा—"तो ठीक है।"

अमित ने फिर कहा—"अपने नाम को भी मैं बदलने की सोच रहा हूँ। मुझे 'ब्रह्मपुत्र' जचता है। तुम्हारी क्या राय है?"

लावण्य बोली—"इतना वजनदार नाम मुझसे न लिया जा सकेगा।"

अमित बोला—"ठीक ही तो है। मेरे नाम को नया रूप देने का तुम्हारा अधिकार है। तुम जो चाहे कह सकती हो।"

लावण्य ने मुस्करा कर कहा—"तुम्हारे नाम को मैं अधिक परिवर्तित नहीं करूँगी। हां, वजन अवश्य हलका किये देती हूँ। मैं तुम्हें 'मीता' कह कर पुकारा करूंगी।"

अमित ने मुस्करा कर कहा—"तुम्हारी पसन्द भी अति उत्तम है। पद्यावली में 'मीता' का पर्यायवाची शब्द है 'प्रीतम'! क्यों क्या इसी नाम से मुझे सबके सामने पुकारोगी?"

लावण्य ने उत्तर दिया—"मैं अपने रत्न को इतना सस्ता जाने नहीं दूंगी। पांच कानों में पड़कर नाम अति सस्ता हो जाने का भय रहता है।"

अमित बोला—"तुम्हारी बात से मैं सहमत हूँ, बन्या।"

लावण्य ने पूछा—"बहुत अच्छा, मीता।"

अमित ने फिर कहा—"अगर तुम्हारे नाम पर कभी कविता करने बैठा तो जानती हो, बन्या के साथ अनन्या की तुक बैठाऊँगा।"

लावण्य ने पूछा—"उसका मतलब?"

अमित बोला—"मतलब तो स्पष्ट है। जो भी तुम ही शेष कुछ भी नहीं, अनन्या।"

लावण्य ने कहा—"इसमें आश्चर्य की तो कोई बात नहीं दिखायी देती।"

अमित ने कहा—"क्या कहती हो? इसमें आश्चर्य नहीं? समझो तो सही कि तुम्हें जो कोई भी देखता है वही कहता है कि जैसी तुम हो वैसी कोई

नहीं। तुम अद्वितीय हो। अपने इन्हीं भावों को जब कविता में रखूँगा तो जानती हो वह बोल होंगे--

मेरी प्रिये वन्या,
हो तुम अनन्या।
हो अपने रूप में,
स्वयम् ही धन्या।।

लावण्य ने चौंक कर पूछा—"तो क्या तुम कविता भी करोगे ?"

अमित ने कहा—"अपने भावों को अगर शब्दों में बांधना ही कविता कहा जाता है तो अवश्य करूँगा। किसकी मजाल है जो मुझे रोक सके ?"

लावण्य बोली—"तुम इतने भावातुर क्यों हो उठे हो ?"

अमित ने उत्तर दिया—"परिस्थितियां ही मनुष्य को भावातुर बना देती हैं। कल रात 'आक्सफोर्ड बुक आफ वर्सेज' पलट डाली किन्तु मन को शान्ति देने वाली कविता ही न मिली। तब यही सोचा कि अपने भावों को ही शब्दों में बांधूँगा ताकि हृदय को चैन आ सके।"

इतना कह कर अमित ने लावण्य का हाथ अपने हाथों में दबा लिया; बोला—"जानती हो तुम्हारी उंगलियां मेरी उंगलियों से जिस कविता में बातें कर रही है वैसा आज तक कोई कवि लिख ही नहीं सका है।"

लावण्य ने कहा—"मुझे तुमसे भय लगता है।"

अमित बोला—"सो क्यों ?"

लावण्य ने उत्तर दिया—"कारण यह है कि जल्दी ही तुम्हें कोई वस्तु नहीं भाती। इसी कारण मैं भय खाती रहती हूँ, मीता।"

अमित ने कहा—"मझ पर विश्वास तो करो। मैं अपने हृदय को टटोल चुका हूँ। मेरे हृदय के हर कोने में तुम्हीं हो। मेरे जीवन की रग २ में ही तुम साकार हो चुकी हो। इसीलिये तो बार २ कहता हूँ—

'For Gods sake hold your tongue and let me love."

इसके बाद अमित ने लावण्य का हाथ उठा कर अपने मुँह पर रख लिया। दोनों काफी देर तक शान्त ही बैठे रहे। लावण्य के हाथ को लेकर

उसने अपने मुँह पर भी फिराया और बोला—"आज प्रभात बेला में उठते समय अनेकों प्राणियों ने नये २ मन्सूबे बाँधे होंगे। मगर न जाने कितनों के पूरे हुये होंगे और कितनों के मिट्टी में मिल गये होंगे? जिनके पूरे हुये होंगे उनमें से मैं भी एक भाग्यवान् प्राणी हूँ।"

लावण्य शान्त रही। उसने अमित को उत्तर नहीं दिया।

अमित ने पुनः कहा—"बन्या, तुम्हारा मौन मेरे हृदय पर आघात् कर रहा है।"

लावण्य ने नीची आखें करके उत्तर दिया—"मीता, तुम्हारी बातें सुन कर मुझे भय लगता है।"

अमित बोला—"कैसा भय?"

लावण्य ने कहा—"तुम्हारी आकांक्षायें पूर्ण करने में मैं कहां तक समर्थ हो सकूंगी? यही सोचकर हृदय कांप उठता है।"

अमित बोला—"बिना विचारे ही तुम मुझे जितना देती रहती हो उसे पाकर ही मैं सन्तुष्ट रहता हूँ। वही तो तुम्हारे दान का महत्व है। यह बात शायद तुम नहीं जानतीं?"

लावण्य बोली—"यह जान कर मौसी जी ने अपनी सम्मति दे दी है, मैं सोचने लगी हूँ कि अब मैं तुम्हारी पकड़ से न बच सकूंगी।"

अमित ने कहा—"एक न एक दिन पकड़ में तो आना ही था! सोच कैसा?"

लावण्य बोली—"मीता! तुम्हारी बुद्धि मुझसे बहुत आगे है। मैं तुम्हारा सहयोग दे सकूंगी अथवा मार्ग ही में पिछड़ जाऊँगी? जानती हूँ अगर पिछड़ गयी तो तुम बुलाओगे भी नहीं। मीता, मेरी बात मानो, मैं तुम्हारे योग्य नहीं। तुम मेरे साथ ब्याह करने की बात छोड़ दो। अब तक तुम्हारे संसर्ग में रह कर जो कुछ भी मैंने पाया है उसके सहारे ही मेरा शेष जीवन चैन से बीत जायेगा। मैं नहीं चाहती कि तुम मेरे कारण अपने हृदय की स्वतंत्रता छीन लो।"

अमित बोला—"तुम क्या कह रही हो? यह सब आशंकायें क्यों? मुझ पर विश्वास करो।"

लावण्य बोली—"मीता, तुमने ही तो मुझे सच कहना सिखाया है। अपने अन्तः करण की भावनायें मैं तुम्हारे सम्मुख शब्दों के रूप में प्रगट कर रही हूँ। तुम साहित्य क्षेत्र में विहार करने वाले स्वतन्त्र प्राणी हो। घर गृहस्थी के जाल में बंधकर रहना शायद तुम्हें पसन्द न आये। अनेकों बार तुम्हारे ही मुख से मैं विवाह का दूसरा नाम तुम्हारे ही शब्दों में 'वलगर' भी सुन चुकी हूँ। हो सकता है कि इस समय भावावेश में तुम मेरे साथ विवाह करने को उतारू हो गये हो। भविष्य में तुम्हें उतनी रुचि न रह सके।"

अमित ने कहा—"बन्या, मुझे आश्चर्य है कि तुम कड़ी से कड़ी बात भी कितनी मृदुलता से कह सकती हो।"

लावण्य बोली—"मीता, अपनों से दुराव नहीं होता। इसी कारण यह सब तुम्हें बताना आवश्यक ही था। मैं हमेशा यही चाहती हूँ कि तुमको मेरे प्रति कभी गलतफ़हमी न हो। हम दोनों ने परस्पर एक दूसरे को जिस रूप में देखा है उसी रूप में सदा देखते रहें, उसी प्रकार रुचि लेते रहें। यही मेरी इच्छा है।"

अमित बोला—"बन्या, तुम्हारी सफलता पर मैं तुम्हें बधाई देता हूँ। तुमने अपने ढंग से मेरी व्याख्या करके मुझे आश्चर्यचकित कर दिया है। फिर भी मैं इस बात को लेकर तुम से तर्क वितर्क नहीं करूँगा। तुमने केवल एक जगह गलती की है। तुम यह भूल गयी हो कि मनुष्य का चरित्र भी परिवर्तनशील है। घर की चाहरदीवारी में मनुष्य सीखे हुये पशु के समान ही आचरण करता है लेकिन जब वह घर से बाहर होता है तो वह वन की ओर भाग निकलता है। उसका स्वभाव पूर्णतया पल जाता है। उसकी......।"

लावण्य ने पूछा—"आज तुम उन दोनों में से किस अवस्था में हो?"

अमित बोला—"जो मैं कभी नहीं था वह आज हूँ। तुमसे पहले अनेकों लड़कियों से मेरा परिचय हुआ। कोई भी मेरी रुचि के अनुकूल न बैठी। अपनी २ रुचि ही तो है। बन्या, तुम्हारे संसर्ग में आते ही मैं क्या से क्या हो गया हूँ तुमसे छिपा नहीं है!"

लावण्य उत्तर न दे सकी।

अमित ने पुनः कहना प्रारम्भ किया—"बन्या, जिस प्रकार दो नक्षत्र

चलते २ टकरा कर एकाकार हो जाते हैं उसी तरह तुम मेरे जीवन में प्रवेश पा गयी हो। तुमने मुझे बदल दिया है। मैं वह नहीं रहा जो पहले था। तुम्हारे साथ मिलते ही मेरा अपना रूप जाता रहा है। तुमने मेरे जीवन का स्रोत अपने में सीमित कर लिया है, ऐसा मेरा अनुमान है।"

लावण्य की आँखें छलकने लगीं। उसने अमित के मन की गहराई को जाना। उसके जीवन में वह स्वयम् कितना प्रवेश पा चुकी है, उससे छिपा न रह सका। अमित कुछ देर तक शान्त रहा। उसे आभास होने लगा कि उसके हृदय में अब कुछ शेष नहीं। जो भी कुछ था, वह लावण्य को बता चुका है। उसे इसी में सुख था। शान्ति सुख की सूचक थी।

सहसा लावण्य ने कहा—"मीता, एक बात तो बताओ कि ताजमहल बनवाकर शाहजहां ने अपनी प्रिय मुमताज का दुःख प्रगट किया है अथवा ताज-महल की सौन्दर्यमय कान्ति को देखकर उसे उसकी मृत्यु से सुख मिला?"

अमित बोला—"तुम्हारी इन भावनाओं से मैं चौंक पड़ता हूँ। भय है कि तुम कविता न करने लगो।"

लावण्य ने कहा—"कविता करने में मुझे रुचि नहीं।"

अमित ने प्रश्न किया—"कविता करना बुरी बात तो नहीं?"

लावण्य बोली—"जीवन के उत्ताप के जिन्हें दीप जलाने की इच्छा होती है, वे ही कविता करते हैं। मुझे अपने जीवन का ताप, जीवन के लिये ही उपयोग करने में आनन्द मिलता है।"

अमित बोला—"तुम्हारी बातें रहस्य से खाली नहीं होतीं। उन्हें सुनकर मानो मैं चौंक पड़ता हूँ। तुम्हारी बातों का मुझ पर क्या प्रभाव होता है, वह शायद तुम भी नहीं जानतीं? ज्ञात होता है, इस समय फिर निवारण चक्रवर्ती का आह्वान करना पड़ेगा। निवारण का नाम सुनते ही तुम विरक्त हो जाती हो, पर क्या करूँ विषम परिस्थितियों में वही मेरी सहायता करता है। न जाने कैसे कापी के पन्ने पलटते हुये 'झरना' कविता हाथ लग गई। उसके भावों में अपने को खो बैठा। ज्ञात होने लगा कि उस कविता में मेरे ही भावों को लिपि-बद्ध करने की चेष्टा की गई है। शिलांग आने पर मेरा झरना मुझे मिल गया है। तुम भी उसे सुनो—

झरने, है तुम्हारे जल की
कितनी स्वच्छ धारा,
प्रतिबिम्बित होते हैं जिसमें
सूर्य और तारा।

मैं अगर स्वयम् भी तुम्हारे हृदय की स्पष्टता का वर्णन करने की चेष्टा करता तो शायद मैं इतना सुन्दर वर्णन न कर सकता। तुम्हारे हृदय की स्वच्छता ही ऐसी है कि जिसमें तुम्हारे भाव सहज ही दिखाई दे जाते हैं। यद्यपि तुम अपने भावों को दबाकर छिपाने की चेष्टा कर रही हो, किन्तु मैं तुम्हारी इन समस्त चेष्टाओं और मुखाकृतियों द्वारा उन भावों को स्पष्ट रूप से देख सकता हूँ।

उस अपनी ही धारा में मेरी परछाँई को
कुछ थोड़ी जगह निकाल वहीं तुम उसे सजाना,
खेल के बहाने से
होकर भी मीत तेरे हम हो जायेंगे खिलौना ?
मेरे उस प्रतिबिम्ब को दे देना तुम
कोयल का मीठा राग,
कुछ अपनी वाणी भी देना जिससे
करती हो नित वैराग।

तुम झरने के सदृश्य हो। ऐसी बात तो नहीं है कि तुम अकेली ही अपनी इस जीवन धारा में प्रवाहित होती चली जा रही हो। तुम्हारे इस तरह जाते समय तुम्हारा स्वर भी तुम्हारा ही साथ दे रहा है। तुम अपने इन पदों को इस संसार के जिन कठोर और सदैव स्थायी रहने वाले पत्थरों पर रखती हो, वे भी तुम्हारे पद के प्रहार के कारण एक ही साथ, एक ही लय में स्वर करने लगते हैं।

प्रतिबिम्ब मेरा और मुस्कान तेरी,
दोनों ही तो हैं अनुरूप।
देखकर इन दोनों को आज,
मस्त है मेरा मन कवि-स्वरूप।

प्रति पग कर चमक चाँदनी की उनहार,
मस्त हो चलती जैसे मेघ बयार।
तेरी बातों को कर अनुभव निज रोम में,
अपने ही हृदय का देखता हूँ रूप मैं।
तेरे ही झोंकों से जाग उठा मेरा मन,
निरख निज को जान गया अपनापन।

लावण्य अमित के इस छन्द को सुनकर गम्भीर चहरे से बोली—"मैं चाहे कितनी देदीप्यमान और तीव्रगामी क्यों न रहूँ, किन्तु मैं तुम्हारे प्रतिविम्ब को पकड़ने में असमर्थ ही रहूँगी, क्योंकि उसे कोई नहीं पकड़ सका है।"

अमित बोला—"जो काम कोई नहीं कर सका है, वह तुम अवश्य करोगी। मेरी छाया के साथ मेरी वाणी का स्वरूप भी तो रहेगा।"

कहाँ रहेगा ? निवारणचन्द्र की कापी में !" लावण्य हँस कर बोली।

"मेरे हृदय के अन्त में जो स्रोत फूट रहा है, वह न जाने किस प्रकार निवारणचन्द्र के इस फुब्बारे से फूट निकली है ? वैसे तो संसार में आश्चर्य की कोई वस्तु नहीं है।" अमित बोला।

लावण्य ने मुस्करा कर कहा—"फिर कोई बात नहीं, मैं निवारण चक्रवर्ती के से फुब्बारे में से ही तुम्हारे मन को खोज लूँगी। कहीं और जाने की आवश्यकता ही नहीं होगी।"

खाना खाने का समय हो चुका था। अन्दर से योगमाया ने खाने के लिये बुलवाया। दोनों उठकर अन्दर चले गये। अमित मन ही मन सोचने लगा—"लावण्य अपने ज्ञान के प्रकाश में सब कुछ जान लेना चाहती है। लाख चेष्टायें करने पर भी ज्ञान के प्रकाश के सम्मुख मनुष्य अपने को छिपाने में असमर्थ हो जाता है। लावण्य ने जो कुछ भी कहा है, वह कठोर सत्य है। उसकी बातें अकाट्य हैं। अन्तरात्मा के भावों को कोई नहीं रोक सकता। वह प्रकाश में आ ही जाते हैं। क्रम बदल सकता है। कोई उन भावों को जीवन में प्रगट करता है, तो कोई रचना में। मैंने सदा रचना का सहारा लेकर ही अन्तरात्मा के भावों को जाना है। लावण्य स्त्री है। वह जीवन को महत्व देती है। मैं सृष्टि करता हूँ, वह रक्षा करती है। सृष्टि को रक्षा से टकराना ही पड़ेगा।

अत्यधिक प्रेम के बाद ही तो विरक्ति होती है। इसीलिये सोचता हूँ, शायद हमारा श्रेष्ठ पुरस्कार मिलन नहीं, मुक्ति है।"

इन विचारों से उसका हृदय टूट गया। सत्य से मुँह तो नहीं मोड़ा जा सकता। अन्त में सत्य को स्वीकार करने के लिये उसे बाध्य होना ही पड़ा।

८.

तर्क-वितर्क

योगमाया ने लावण्य से पूछा—"बेटी, तुमने अच्छी तरह विचार कर लिया है?"

लावण्य ने गम्भीरता से कहा—"हाँ, माँ!"

योगमाया ने कहा—"यह तो मैं मानती हूँ कि अमित बहुत चंचल है। उसकी चंचलता ने ही मुझे ममत्व में बाँध लिया है। उसको देखकर ऐसा प्रतीत होता है मानो उसके पास जो कुछ भी है उसे वह चंचलता के कारण बिखेरे दे रहा है।"

लावण्य मुस्करा कर बोली—'यह तो कोई अच्छी बात नहीं, माँ! उनका स्वभाव ही ऐसा है कि वह कुछ पाकर भी, रखना नहीं जानते। पाकर बिखेर देना ही उनकी प्रकृति है।"

योगमाया ने ममत्व से वशीभूत होकर कहा—"इसी कारण मुझे उस पर दया आती है।"

लावण्य बोली—"माँ अपनी ममता के कारण सन्तान के लड़कपन पर प्रसन्न ही होती है। बालक जो कुछ भी करता है, वह खिलवाड़ होता है, किन्तु उसके खिलवाड़ की जिम्मेदारी होती है माँ पर। आप समर्थ हैं, आपमें ममत्व है, आप सारी जिम्मेदारी उठा सकती हैं। आपकी इन जिम्मेदारियों का भार मैं सहन न कर सकूँगी।"

योगमाया ने कहा—"लावण्य, इधर कुछ दिनों से तुम्हारे सम्पर्क में आने के कारण अमित का व्यवहार बदल-सा गया है। उसका मन शान्त हो गया है। तुमसे वह प्रेम करता है और जिसमें तुम्हें प्रसन्नता होती है, वही करने की चेष्टा करता है।"

लावण्य बोली—"यह सब मुझे ज्ञात है।"

योगमाया बोली—"तब तो तुम्हारी चिन्ता व्यर्थ है।"

लावण्य बोली—"माँ, उनका मन निर्मल है। उनका स्वभाव ही कुछ ऐसा हो गया है और मैं उनके स्वभाव पर आघात नहीं करना चाहती।"

योगमाया ने कहा—"लावण्य, मेरे विचार भिन्न हैं। मैं समझती हूँ, प्रेम में आदान प्रदान दोनों ही होते हैं। आदान प्रदान को अत्याचार तो नहीं कहा जा सकता।"

लावण्य ने गम्भीर होकर कहा—"माँ, संसार में हर वस्तु की अपनी सीमा है। आदान-प्रदान का भी अपना क्षेत्र है। जितना भी साहित्य मैंने पढ़ा है, उससे यही जाना है कि प्रेम दुखान्त वहीं होता है, जहाँ दोनों प्राणी एक-दूसरे को स्वतन्त्र समझकर भी सतुन्ष्ट करने में असफल रहते हैं। अपनी इच्छायें दूसरों पर थोपने की चेष्टा होती है, अत्याचार होते हैं और...... ।"

योगमाया ने उत्तर दिया—"......यह मैं जानती हूँ। यह अस्वाभाविक भी नहीं, ऐसा मेरा विचार है। घर-गृहस्थी बनाते समय विरोध सहज ही उत्पन्न होता है। जहाँ प्रेम है वहाँ उभरता नहीं। जहाँ प्रेम का अभाव होता है, वहाँ उबल पड़ता है, शायद इसे ही तुम दुखान्त कहती हो ?"

योगमाया की बात सुनकर लावण्य ने कहा—"माँ, तुम घर-गृहस्थी की बात करते समय यह भूल गयीं कि उस काम के लिये आदमी दूसरी ही मिट्टी के होते हैं। वह दुनियाँदार होते हैं—पहले से ही गढ़े गढ़ाये; और अगर उनमें कुछ कमी होती भी है, तो समाज ठोक-पीट कर काम चलाऊ बना लेता है। लेकिन जो आदमी इस प्रकार की मिट्टी से वंचित है, वह अपनी स्वतन्त्रता सहज ही नहीं छोड़ सकता। स्त्री उससे खींचातानी करने की चेष्टा करके यदि अपने मन के माफिक बनाना भी चाहे तो ऐसा नहीं कर सकेगी। फल

स्पष्ट ही होगा, हाथ से उसे खो देगी। जबरदस्ती गले पड़ने का जीवन मुझे पसन्द नहीं।"

योगमाया ने प्रश्न किया—"स्पष्ट कहो, तुमने क्या विचारा है ?"

लावण्य बोली—"स्पष्ट तो यही है, माँ, मैं विवाह में उन्हें बांधना नहीं चाहती। उनको बांधना सरल भी नहीं। तुम तो जानती ही हो ब्याह के बाद स्त्री पुरुष को अति निकट रहना पड़ता है। दोनों के बीच में कोई पर्दा नहीं रह सकता। जिसके मन में स्थिरता नहीं वह ब्याह के योग्य नहीं, ऐसा मेरा विचार है।"

योगमाया ने कहा—"लेकिन अमित तुम्हारे लिये विकल है। तुमको पाकर खो देना उसके लिये असम्भव है।"

लावण्य बोली—"नहीं, माँ, वह मुझे जितना चाहते हैं वह भी मुझ से छिपा नहीं। चाह भी कैसे सकते हैं ? मैं साधारण स्त्री हूँ शायद; यह वह नहीं जानते। उन्होंने मुझे अपनी इच्छाओं के अनुकूल पाकर सांस ली है। मुझमें लगातार रुचि लेने लगे हैं। अगर उनकी रुचि की धारा बदल गयी, या उन्हें मेरे निकट सम्पर्क में आ जाने के बाद पता चला कि मैं असाधारण स्त्री नहीं हूँ तो उनका हृदय टूट जायेगा। विवाह के बाद कोई चारा रहता ही नहीं; परिवर्तन असम्भव हो जाता है।"

योगमाया ने मन्द स्वर में पूछा—"तुम्हें भास होता है कि अमित तुम जैसी लड़की को पूरी तरह स्वीकार न कर सकेगा ?"

लावण्य ने कहा—"यह बात उनके स्वभाव के ऊपर निर्भर है। यदि उनका स्वभाव बदल जाये तो स्वीकार भी कर सकते हैं। मैं उनका स्वभाव बदलना नहीं चाहती।"

योगमाया ने प्रश्न किया—"फिर तुम क्या चाहती हो"?

लावण्य ने गम्भीर होकर कहा—"मैं जिस हालत में हूँ उसी में खुश हूँ। इससे अधिक बढ़ने की मेरी अभिलाषा नहीं।"

योगमाया बोली—"क्या तुम्हारा विचार विवाह करने का नहीं है ? अमित से न सही, किसी और से ?"

लावण्य निरुत्तर रही।

योगमाया ने कहा—"तुम्हारा किताबी ज्ञान तर्क-वितर्क में मुझे परास्त कर सकता है। मगर मैं अपने अनुभवों के बल पर तुम्हारे मन की पीड़ा जान सकती हूँ। तुम मुझसे छिपाना भी चाहो तो नहीं छिपा सकोगी। अनेकों बार मैंने तुम्हें रात को बिस्तर पर पड़े रोते देखा है। मन की पीड़ा को बिना किसी से कहे सुनें रो कर दूर कर लेना स्त्री जाति का स्वभाव है। यही सोचकर अनेकों बार इच्छा होने पर भी मैंने तुम्हें जाकर सांत्वना देना श्रेयकर नहीं समझा। तुम्हारे हृदय में प्रेम की टीस का अनुभव मैं कर सकती हूँ। लेकिन तुम्हारे मन की शंकाओं को समाधान करने की शक्ति मुझमें नहीं। तुम अमित से विवाह करो या न करो दूसरी बात है। उसमें मैं कोई दखल देना नहीं चाहती। मेरी सलाह तो यही है कि तुम विवाह करने की इच्छा को सदैव के लिये मत कुचल देना। ऐसा कोई प्रण मत कर बठना। मैं जानती हूँ कि अगर कोई बात तुम्हारे मन में एक बार घर कर लेती है वह फिर निकाले नहीं निकलती।"

अपने साड़ी के पल्ले से खेलते हुये लावण्य ने योगमाया की बातों को सुना, समझने की चेष्टा की।

योगमाया कहती रही—"मेरे विचार से अधिक पढ़ने और सोचने के कारण ही तुम्हारा मन दुर्बल हो गया है। आधुनिक विचार धाराओं ने तुम्हें संकीर्ण बना दिया है। तुम लोगों के हृदय की शक्ति जाती रही है। आज जो कुछ भी तुमने कहा है वह आज की समस्या नहीं। नारी जाति न जाने कितने समय से इन्हीं समस्याओं के बीच गुजरती चली आ रही है। हमारे समय में भी यही दशा थी, किन्तु तुम लोगों ने अब उसे इतना विस्तृत रूप दे दिया है मानो इसके सिवा शेष कुछ है ही नहीं।"

योगमाया की इस बात पर लावण्य बिना मुस्कराये न रह सकी। उसने कहा—"मां, ज्ञान के प्रकाश में मनुष्य अधिक स्पष्टता से भविष्य में लगने वाले धक्कों को देखकर उनका सामना करने के लिये तैयार हो जाता है। समय की अवधि के साथ वह उनको सहने के योग्य भी हो जायेगा; एक मेरा विचार है।"

योगमाया ने दुःखी होकर कहा—"तुम्हारी बातों से मुझे विश्वास हो चला है कि तुम्हारा और अमित का मिलन अगर न होता तो ही ठीक था।"

योगमाया की इस बात से लावण्य मर्माहत होकर रो उठी। उसने योगमाया की गोदी में सिर छिपाकर रोते हुये कहा—"भगवान के लिये ऐसा मत कहो, मां! जो कुछ हुआ है उसके सिवा हो ही क्या सकता था? मैं क्या हूँ यह उनके ही सम्पर्क में आने से जान पायी हूँ। पहले तो मेरा अपना ही विचार था कि मैं शुष्क हूँ, नीरस हूँ। सरस्वती आराधना को ही मेरा जन्म हुआ है। आज मुझे ज्ञात हुआ है कि मैं भी प्रेम कर सकती हूँ। किसी का प्रेम पा सकती हूँ। क्या मेरे लिये यह बात महत्व की नहीं? अपने विषय में इतना ज्ञान प्राप्त करके मैं सन्तुष्ट हूँ। पहले मैं छाया मात्र थी आज अपने असली रूप को जानने में सफल हो चुकी हूँ। इससे अधिक इच्छा कर भी क्या सकती हूँ? मां, सब कुछ सुनकर भी तुम ब्याह करने को मत कहना।"

योगमाया ने लावण्य की बातें सुनीं। उसको सांत्वना देने के लिये स्नेह से उसके सिर पर हाथ फेरने लगीं।

९.

गृह परिवर्तन

जब कलकत्ते से अमित शिलांग को रवाना हुआ तब उसके मित्रों ने उसे रोका। शिलांग का वातावरण उसे पसन्द न आयेगा, समझाना चाहा। अमित, किसी की बात सहज ही मान लेने को तैयार नहीं होता, यह सभी जानते थे। अतः उन्होंने सोचा बेकार जिद करके रोकने से कोई लाभ नहीं। उनका विचार था कि वह शीघ्र ही शिलांग के एकाकी जीवन, शुष्क वातावरण से घबरा कर एक दो सप्ताह में ही घर लौट आयेगा। उसके लिये ऐसी भविष्यवाणी करते हुये नरेन्द्र मित्र ने शर्त तक बदी थी।

महीनों पर महीने बीते, लेकिन अमित कलकत्ता नहीं लौटा। पहाड़ी प्रथा के अनुसार वह जिस मकान में ठहरा था उसकी अवधि समाप्त हो चुकी थी। अवधि समाप्त होने के बाद उसे बढ़ाने की गुञ्जायश भी शेष नहीं थी

क्योंकि उस मकान का मालिक उसे किसी जमींदार को देने का वायदा कर चुका था। अमित को मकान की खोज करनी पड़ी। योगमाया के मकान के पास अमित को मकान ढूँढ़े न मिला। अन्त में एक टूटे फूटे पुराने मकान में जो कभी किसी ग्वाले की सम्पत्ति थी, अमित ने अपना डेरा डाला।

मकान क्या था? मानो मकान का ढांचा लिये 'ओपन एयर थियेटर' का नवीनतम् रूप था। वर्षा, वायु, और धूप उसमें अनेकों मार्गों द्वारा आकर विचरण करने के लिये स्वतन्त्र थीं। सामान तक रखने की गुञ्जायश न थी। मगर अमित ने इन सबकी पर्वाह न की। उसे मकान से मतलब था सो मिल गया। अपनी तपस्या करने वह उसी में आ डटा।

योगमाया उसके घर की दशा देखकर आश्चर्यचकित रह गयीं। बोली—"बेटा, तुम इस प्रकार अपनी परीक्षा क्यों ले रहे हो?"

अमित ने सहज स्वभाव से उत्तर देते हुये कहा—"मौसी, जगज्जननी उमा को भी वर प्राप्ति के लिये हिमालय पर तपस्या करनी पड़ी थी। उनकी तपस्या निराहार थी। मेरी तपस्या भी उनके ही समान है। शिलांग पहाड़ पर वधू प्राप्त करने के लिये मैं भी आज तपस्या में रत हूँ। बिना सामान के रह सकूंगा, ऐसी मुझे आशा है।"

अमित ने जो कुछ कहा था सो उसके स्वभाव के ही अनुकूल था किन्तु फिर भी उसकी यह दशा देखकर योगमाया के हृदय पर आघात् लगा। मन में आया कि अमित को अपने ही घर लिवा ले चलें किन्तु न जाने क्या सोचकर वह ऐसा न कह सकीं। उसकी दशा से दुःखी होकर उन्होंने उसके स्तैमाल के योग्य अपने ही घर से कुछ सामान भिजवा दिया। अमित की ओर उनका मन अधिक खिंच गया। एक बार लावण्य से भी उन्होंने कहा—"बेटी, तुम्हारा मन इतना पत्थर होगा, इसका मुझे पता न था।"

एक दिन बहुत जोर की वर्षा हुयी। जब वर्षा समाप्त हो गयी तब वह अमित की खबर सुध लेने उसके घर आयीं। उन्होंने देखा, एक पुरानी मेज के नीचे कम्बल बिछाकर लेटा हुआ अमित किसी पुस्तक को पढ़ने में तल्लीन था। कोठरी में चारों तरफ बरसाती पानी भरा था इसी कारण अपने बचाव के लिये अपने बुद्धि विवेक से ही अमित ने अपने शरीर की रक्षा के हेतु मेज के

आश्रय में अपनी नवीन गुफा का निर्माण किया था। यद्यपि पहले वर्षा का आगमन देख अमित ने योगमाया के घर की ओर चले जाने की सोची थी किन्तु जब उसे ज्ञात हुआ कि भूल से वह अपनी बरसाती कलकत्ता ही भूल आया है तो उसे अपना यह विचार त्यागना ही पड़ा। उसकी यह दशा देखकर योगमाया ने कहा—"यह सब क्या है, अमित ?"

मौसी को आया देख अमित शीघ्रता से अपनी गुफा में से निकल आया और बोला—"मौसी, बिना घर वाली के घर की दशा भी मुझसे अच्छी नहीं।"

यह कठोर सत्य था। योगमाया के हृदय में घर कर गया। उन्हें मन-ही मन लावण्य के ऊपर बहुत क्रोध आया। पहले तो मन में आया कि वह अमित को अपने साथ ही घर ले जायें किन्तु कुछ सोच कर बोलीं—"अच्छा बेटा, अभी तो चलूं, थोड़ी देर बाद फिर आऊँगी।"

खिन्न मन वह घर लौटीं। उन्हें लावण्य पर क्रोध था। घर पहुँचते ही सबसे पहले वह लावण्य के कमरे में गयीं। देखा वह अपने कमरे में आराम कुर्सी पर पड़ी बड़ी निश्चिन्तता से किसी पुस्तक को पढ़ने में तल्लीन है। इस तरह उसे आराम से पड़ा देख उनका क्रोध उबल पड़ा।

किसी तरह मन को शान्त करके बोलीं—"लावण्य! चलो बाहर टहल आयें।"

लावण्य ने उत्तर दिया—"मां, आज कहीं जाने की इच्छा नहीं हो रही है।"

योगमाया ने उसकी बात को नहीं समझा। उन्होंने केवल यही अनुमान लगाया कि लावण्य को पुस्तक में आनन्द आ रहा है इसलिये वह बाहर जाना नहीं चाहती। खैर कुछ न बोलीं; लौट गयीं। असल में बात इसके बिलकुल विपरीत ही थी। लावण्य का हृदय अमित के लिये हा हा कार कर रहा था। वह मन के बोझ को सम्भालने में स्वयम् को असमर्थ पा रही थी। इसी कारण स्वयम् अपने से बचने के लिये उसने पुस्तक का सहारा लेकर उसमें खो जाना चाहा था। हर समय उसके कान किसी की पदचाप सुनने को चौकन्ने थे। तनिक सी आहट पर वह चौंक पड़ती थी। उसे विश्वास था अमित आयेगा।

किन्तु वह नहीं आया। उसका मन चंचल हो उठा। वह अपने पर खीजने लगी। मन की व्यथा बढ़ती रही। आज उसने अमित के सम्मुख आत्म समर्पण करने का निश्चय कर लिया था। उसके हृदय का अहंकार धुल गया था। उसको विश्वास हो चला था कि बिना अमित के उसका जीवन दूभर हो जायेगा। मन की बात कहने के लिये वह तड़पती रही। लेकिन अमित नहीं आया। भावनाओं का वेग बढ़ा। हृदय भार सह न सका अन्त में वह तकिये में मुँह छिपाकर आंसू बहाने लगी। मन ही मन कहने लगी 'जब से तुम मेरे जीवन में आये हो मेरा प्रेम साकार हो उठा है। तुम्हारा प्रेम सत्य है। मैं तुम्हारे बिना अपूर्ण थी और सदा रहूँगी।"

समय बीतता गया लेकिन अमित नहीं आया। उतावली में कई बार वह बरामदे में जाकर भी देख आई कि शायद दूर से आता हुआ नजर पड़ जाये। किन्तु सब बेकार ही रहा। उसका मन निराशा से भर गया। वह स्वयं पर झल्ला पड़ी। उस घड़ी को कोसने लगी, जब उसने अमित के प्यार भरे प्रस्ताव को ठुकरा दिया था। अनमने मन से उसने पुस्तक उठाकर पढ़ने की चेष्टा की, मगर असफल रही। पुस्तक उसके हाथों में, उसकी आँखों के सामने खुली पड़ी थी, मगर मन कहीं और था, अमित के पास।

सन्ध्या हो चुकी थी। योगमाया टहलने के लिये उसे बुलाने आयीं। उन्होंने उसके चहरे को देखा। मन की व्यथा को जाना। फिर पास ही कुर्सी खींचकर बैठ गयीं, बोलीं—"लावण्य, सत्य बताना तुम्हें अमित से प्रेम है अथवा नहीं ?"

लावण्य ने कहा—"इसका उत्तर तुम्हें पहले भी कई बार दे चुकी हूँ माँ !"

योगमाया ने कहा—"अगर अब भी तुम्हारा वही उत्तर है तो मेरी सलाह मानो। स्वयम् अपने मुँह से उसे एक बार न कह दो। इस तरह धोखे में मत रखो। तुम क्या जानो वह तुम्हें पाने के लिये क्या कुछ नहीं सह रहा है ? उसकी दशा इस समय भिखारी के समान है—न शरीर के ही आराम का उसे विचार है और न अपने मन के आराम का। मृगतृष्णा में वह तुम्हारे पीछे मारा २ फिर रहा है। वह नहीं जानता तुम औरत नहीं पत्थर हो।"

लावण्य का गला भर आया। शब्द स्पष्ट न निकल सके। वह हार गई। रुंधे हुये कण्ठ से बोली—"मां, अगर तुम मेरे प्रेम की बात कहती हो तो इतना मैं अवश्य कह सकती हूँ कि मुझ से अधिक वह किसी और को प्रिय नहीं। मैं उनके प्रेम के लिये अपनी जान तक दे सकती हूँ। ऐसा सब क्यों हुआ मैं स्वयम् भी नहीं जानती।"

योगमाया आश्चर्य चकित होकर बोली—"तो फिर तुम उससे बच निकलने को क्यों आतुर हो ? वह तुम्हें गहरे अन्धकार में पाने के लिये तड़फ रहा है। प्रकाश में आओ और उसको सहारा दो। चलो, अभी मेरे साथ अमित के घर चलो।"

लावण्य इन्कार न कर सकी। दोनों अमित के घर की ओर चल दीं।

—०—

१०.
द्वितीय साधना

जिस समय योगमाया और लावण्य अमित के घर पहुँचीं उस समय अमित भीगी हुई चौकी पर रद्दी कागजों को बिछाये अपनी जीवनी लिखने में तल्लीन था। शिलांग आकर उसने अपना रूप देखा था। अपने पहले रूप और शिलांग के रूप में उसे बहुत बड़ा अन्तर प्रतीत हुआ। शिलांग के जीवन के प्रति उसे मोह हो गया था। जीवन की इस स्वर्णिम स्मृति को वह किसी तरह भूल जाने को तैयार न था। इसी कारण उसने इन दिनों की अपनी जीवन घटनाओं को शब्द जाल में बांध कर रखने का फैसला किया था।

हल्की २ फुहार पड़ रही थीं। आकाश निर्मल हो चला था। एक समय योगमाया और लावण्य को आया देख वह चौंक कर चौकी से खड़ा हो गया और बोला—"मौसी, आपने यह क्या किया ?"

योगमाया ने पूछा—"मैंने क्या किया बेटा ?"

अमित बोला—"आप मेरी यह हीन दशा दिखाने श्रीमती लावण्य को अपने साथ क्यों ले आयीं ? वे न जाने मेरे विषय में क्या सोचेंगीं ?"

योगमाया ने कहा—"कैसी बातें करते हो बेटा ? श्रीमती लावण्य को अपनी आँखों से श्रीअमित की दशा से परिचित हो जाना ही आवश्यक है।"

अमित बोला—"मौसी, श्री का जो एश्वर्य है वही जानना श्रीमती लावण्य के लिये उत्तम है। श्री विहिन दशा को देखने के लिये तो तुम्ही काफी हो।"

योगमाया ने पूछा—"यह भ्रम तुम्हें कैसे उत्पन्न हुआ ?"

अमित बोला—"ऐश्वर्य से ही ऐश्वर्य मिल सकता है। ऐश्वर्य के अभाव में केवल आर्शीवाद प्राप्त होता है। लावण्य आधुनिक नारी है उसे ऐश्वर्य चाहिये। उसे उसी में आनन्द आता है। तुम्हें सादगी से प्रेम है। तुम्हें आर्शीवाद देने में आनन्द आता है।"

योगमाया ने कहा—"आधुनिक होने पर भी नारी का नारीत्व नहीं जाता। जो अपना है उससे पर्दा करना उचित नहीं।"

अमित बोला—"तब तो मुझे कविता में ही अपने भाव बताने पड़ेंगे। यह बात मैं श्रीमती लावण्य को पहले ही बता देना चाहता हूँ कि यह कविता किसी कवि सम्राट की नहीं है।"

प्रेम से हृदय भरा हो,
फिर भी माँगने की चाह हो।
हाथ फैलाओ अगर,
देखना खाली न हो,
और आंख भी आली न हो॥

कितने नये तुले शब्दों में पूर्ण प्यार का वर्णन है। प्रेमी की आकांक्षाओं से कंगलापन कहीं नहीं टपकता। शास्त्रों में लिखा है जब देवता भक्तों पर कृपा करते हैं तो इसी अवस्था में भक्त के द्वार पर भिक्षार्थ आते हैं।

जब, गले की रत्न माला
बनेगी वर माला,
तब बदलूंगा माला।
बिठाना ही पड़ेगा
देवी को आसन पर

बिछा कर राह के किनारे
सूखी धूल पर ।।

देवी के आगमन पर मन की क्या भावनायें होती हैं, वह इन पंक्तियों से स्पष्ट होती हैं। इसीलिये तो चाहता था कि देवी जी उसी समय प्रवेश करतीं जब मैं उनके स्वागत को तैयार होता। अब इस समय उनको बिठाने लायक भी तो कोई स्थान नहीं दीखता।

चैती बयार में विकसित कुसुम,
बांध रखना प्रियतमा को
निज प्राण के उद्यान में,
अगणित जलेंगे दीप तब,
अन्धकार के नाश को।

इस कुटिया के नाम-करण की बात सोचते समय मुझे ध्यान आया कि मौसी की गोद में जाते ही सर्व प्रथम मुझे दरिद्रता की ही तपस्या करनी पड़ी। इसीलिये सोचा है कि इस कुटिया का नाम भी "मौसेरा प्रासाद" रख दूं।"

योगमाया ने कहा—"बेटा, तुमने जीवन का एक ही पहलू देखा है जिस ओर मैं खड़ी हूँ। मानती हूँ वहां दरिद्रता ही है। किन्तु अब दूसरा पहलू ऐश्वर्य का भी तो देखो। मैं इस स्थान पर तुम्हारी साधना केवल कागजों तक ही सीमित नहीं रहने दूंगी। तुम अब तक शायद यही सोच रहे हो कि तुम्हारी यह तपस्या निष्फल हो गयी। विश्वास रखो तुम्हारी तपस्या पूर्ण फल के साथ सफल हो गयी है।"

इतना कह कर योगमाया ने लावण्य का हाथ पकड़ कर अमित को बायीं ओर लाकर खड़ा कर दिया और उसके गले से सोने का हार उतार कर उन दोनों के हाथ मिला कर बांधते हुये कहा—"तुम दोनों की जोड़ी जुग २ जिये।"

यह सब इतने नाटकीय ढंग से हुआ कि अमित अवाक् रह गया। लावण्य के साथ उसने भी झुक कर मौसी के चरणों को स्पर्श किया। "तुम लोग बैठो तब तक मैं बगीचे से पुष्प ले आती हूँ" कह कर योगमाया चली गयीं।

अमित सोचने लगा। दोनों पास २ खाट पर ही बैठे थे। शान्ति भंग करते हुये लावण्य ने अमित से पूछा—"आज दिन भर कहां रहे ? आये क्यों नहीं ?"

अमित ने कहा—"आज तक के इतिहास में ऐसा कारण तुम्हें ढूँढ़े न मिलेगा। यह तो तुमने सुना होगा कि प्रेमी प्रेमिका से मिलने अगाध जल को तैर कर भी गये हैं। किन्तु ऐसा कभी नहीं सुना होगा कि बरसाती के अभाव में प्रेमी प्रेमिका से मिलने तक नहीं जा सका। बड़े साहस के साथ ही मैं अपनी परवशता का यथेष्ट कारण तुम्हारे सम्मुख रखने में समर्थ हो सका हूँ। मेरी बातें सुनकर तुम यह मत समझना कि मैं वर्षा के जल से डरता हूँ। तुम्हारी खातिर तो मैं अपने हृदय के अगाध सागर में गोते खाता रहता हूँ। मेरी भावनाओं को व्यक्त करते हुये किसी अंग्रेजी कवि ने शायद ठीक ही कहा है—

For we are bound where riner has not
dared to go,
And we will risk the ship, our-selves and all.

अवश्य है जाना हमें,
नाविक न पहुँचा जहाँ कभी,
झेलेंगे खतरे कुल हम,
साहस तो हम में है अभी ॥

बन्या, क्या सच आज तुम मेरी बाट जोह रही थीं ?"

लावण्य ने मृदु स्वर में कहा—"हां मीता ! तमाम दिन मैं तुम्हारी पद-चाप सुनने को आकुल रही। मुझे ऐसा लगता रहा कि मानो तुम बड़ी दूर से मुझसे मिलने आ रहे हो। अन्त में तुम आ पहुँचे न मेरे जीवन में !"

अमित बोला—"मेरे हृदय में तुम्हें पाने की जो साध थी वह आज पूर्ण हो गयी है। क्या तुम मेरी इस प्रसन्नता का अन्दाजा लगा सकती हो ?"

लावण्य ने बात टालते हुये कहा—"क्या करते रहे आज दिन भर ?"

अमित ने कहा—"हृदय के हर कोने से तुम्हारी ही छाया प्रगट हो रही थी। आकाश से जल गिर रहा था। मैं तुम्हें अपने हृदय पटल पर देखने में

व्यस्त था। बात करना चाहता था परन्तु शब्द मिलते ही न थे। मैं बार २ कह रहा था–वाणी दो, वाणी दो।

O what is this ?
Mysterious and uncapturable bliss
That I have known, yet seems to be
Simple as breath and easy as smile,
And older than the earth.

यह कैसा उपहास ?
रहस्यात्मक और अपकड़ है कैसा वरदान।
परिचित हूँ इससे सदा, हलका स्वांस समान॥
दीखत में ऐसा लगे, जैसे मुस्कान महीन।
आयु इसकी दीखती पृथ्वी सी प्राचीन॥

इसी प्रकार दूसरों की बातों को अपनी भाषा में व्यक्त करता रहता हूँ। अगर कभी गाने की इच्छा होती है तो विद्यापति के बोल गुनगुना उठता हूँ—

"विद्यापति कहे, हरि बिन कैसे बिताऊँ दिन रतियाँ"

जिनके बिना प्राण ही नहीं रह सके, उनके बिना दिन रात कैसे काटूँ ? बारम्बार आकाश की ओर ताक कर, प्रभु से वाणी माँगता हूँ, स्वर की याचना करता हूँ। मेरी प्रार्थना देवगण स्वीकार तो करते हैं, देते भी हैं, पर मुझे पहचान नहीं पाते। मेरा भाग किसी और को दे डालते हैं। समझ में आता है, शायद तुम्हारे कवि रवीन्द्र को मेरे धोखे में दे जाते हैं।"

लावण्य ने मुस्करा कर कहा—"कवीन्द्र से उपासक भी, सम्भव है इतनी बार उन्हें स्मरण नहीं करते होंगे, जितनी बार तुम करते हो।"

अमित अपनी ही सनक में बोला—"बन्या, आज मैं प्रसन्नता के कारण जरूरत से अधिक बहक रहा हूँ। प्रसन्नता का आवेश निकलना चाहता है। मेरे मन का प्याला भर गया है। अधिक को समेट नहीं पा रहा हूँ, इसी कारण शब्दों द्वारा उसे बाहर फेंकने की चेष्टा कर रहा हूँ। कलकत्ता होता तो तुम्हें लेकर मोटर में अनावश्यक ही दौड़ता फिरता।"

तब तक योगमाया फूल लेकर लौट आई। उसने सूरजमुखी के बड़े-बड़े फूल लावण्य के सामने रखकर कहा—"बेटी, इन पुष्पों से तुम अमित को प्रणाम करो। यह नारी के मन को अर्पण करने की प्राचीन परिपाटी है।"

लावण्य योगमाया के आदेशानुसार पुष्पों द्वारा अमित को प्रणाम करने लगी। धीमे स्वर में अमित ने लावण्य के कान में कहा—"बन्या, मैं तुम्हें अपने प्रेम की भेंट स्वरूप एक अँगूठी पहनाना चाहता हूँ।"

लावण्य ने कहा—"मीता, मैं उसकी कोई आवश्यकता नहीं समझती।"

अमित बोला—"बन्या, मेरे इस प्रेमोपहार को अस्वीकार मत करो। तुमसे मैंने क्या कुछ नहीं पाया। मेरा प्रेम हर समय अँगूठी के रूप में तुम्हारी आँखों के सामने रहकर तुम्हारे हाथों की उँगलियों में खेलता रहे, ऐसी मेरी इच्छा है।"

लावण्य ने मुस्करा कर कहा—"तुम अपनी इच्छा को पूर्ण कर सकते हो। मैं तुम्हारी किसी बात को अस्वीकार करना नहीं चाहती।"

अमित बोला—"अच्छा, यह तो बताओ तुम्हें कौन-सा रत्न अधिक पसन्द है?"

लावण्य बोली—"रत्न पहनने में मेरी विशेष रुचि नहीं है। मोती की ठीक रहेगी।"

अमित बोला—"तुम्हारी रुचि मुझसे एकदम मिलती है। मुझे भी मोती ही प्रिय है। मैं तुम्हारे लिये कलकत्ते से मोती की ही अँगूठी मँगाऊँगा।"

११.

मिलन

योगमाया ने अमित और लावण्य का विवाह अगहन में करना निश्चय किया। कलकत्ता जाकर तैयारी करने का भार उन्होंने स्वयम् ग्रहण किया।

लावण्य ने अमित से कहा—"विवाह की बात माँ ने तय कर दी है।

तुम्हें कलकत्ता से आये हुये अधिक दिन हो गये हैं, अब तुम्हें घर लौटना ही उचित है। एक बात का ध्यान रखना कि विवाह से पहले अब भेंट न हो।"

अमित ने पूछा—"यह किस अपराध का दंड है ?"

लावण्य बोली—"अधिक मिलन से आनन्द में कमी होने लगती है।"

अमित हँस कर बोला—"तुमने मुझे ज्ञान की बात बताई है, इस बात को सदैव स्मरण रखूँगा। मैं जानता था कि तुम कविता करती हो, आज अनायास ही तुम्हारे अपने ही मुख से मैं कवित्व-भरे भाव सुनकर पुलकित हो उठा हूँ। ठीक ही कहती हो, आनन्द को बनाये रखने के लिये कभी-कभी कठोर होना भी पड़ता है। तुम्हारा आदेश सिर चढ़ा कर कल ही चला जाऊँगा। मगर अगहन मास मेरे जाते ही तो आरम्भ नहीं हो सकता। इस बीच में जानती हो कलकत्ता जाकर क्या करूँगा ?"

लावण्य ने कहा—"बिना तुम्हारे बताये कैसे जान सकती हूँ।"

अमित बोला—"मौसीजी ने विवाह की तैयारियाँ करने का भार ले लिया है। मुझे विवाह के बाद की तैयारियाँ करनी पड़ेंगी। गृहस्थ बनना कुछ हँसी खेल तो नहीं ? मैं उसे एक कला मानता हूँ। मेरा विश्वास है, गृहस्थी का सुख प्राप्त करने के लिये दम्पत्ति को उचित है कि वह नवीन रचना में लगे रहें, ताकि उनकी रुचि कभी कम न हो।"

लावण्य ने कहा—"आज जी खोलकर तुम अपने मन की बात मुझसे कह डालो। मैं तुम्हें जानने को व्यग्र हूँ।"

अमित बोला—"मिलन, बहुमूल्य वस्तु है। उसे सस्ता करने की परम्परा पर मैं विश्वास नहीं करता। मैं डायमण्ड हारबर की ओर गंगा तट पर एक बगीचा लूँगा। उस स्थान से कलकत्ता बहुत दूर न होगा।"

लावण्य ने पूछा—"कलकत्ता के निकट रहने की बात मेरी समझ में नहीं आई ?"

अमित बोला—"अब तक मेरे सहयोगी वकील समझते थे कि मैं मूर्ख हूँ, मेरी बुद्धि मन्द है, इसीलिये दिन भर शतरंज खेलता रहता हूँ। मगर अब मैं दस से पाँच तक हाईकोर्ट जाऊँगा। वकालत करके यश और धन दोनों प्राप्त करके बताऊँगा कि मैं हर काम को उचित समय पर ही करने का आदी हूँ।"

लावण्य बोली—"तब तो मुझे भी तुम्हारे ही साथ कलकत्ता जाना पड़ा करेगा।"

अमित बोला—"अवश्य ! तुम्हें काम जो करना होगा।"

लावण्य बोली—"तुम्हारे दफ्तर की सफाई ?"

अमित ने कहा—"नहीं, तुम कॉलिज में लड़कियों की अध्यापिका बनकर उन्हें पढ़ाओगी। यह काम तुम्हारी रुचि के अनुकूल ही है। क्या तुम्हें यह काम पसन्द नहीं ?"

लावण्य बोली—"मेरी तुम्हारी रुचि में विभिन्नता है, ऐसा मैं नहीं समझती।"

अमित ने पुनः कहना आरम्भ किया—"बगीचे के बीच एक नहर होगी। उसके एक किनारे मेरा मकान होगा और दूसरे किनारे तुम्हारा मकान। हाँ, बगीचे का नाम रखना तो भूल ही गया। क्या नाम होगा हमारे बगीचे का।"

लावण्य ने कहा—"मिताई से बढ़कर हो ही क्या सकता है ?"

अमित बोला—"मिताई नाम मुझे पसन्द है।"

लावण्य बोली—"कहते रहो। मुझे तुम्हारी बातों में रस मिलता है। नहर के दोनों ओर की बात तो कही मगर यह नहीं बताया कि तुम्हारे आने का साधन क्या होगा ? क्या तैर कर आया करोगे ?"

अमित बोला—"नहीं। मन ही मन तैरता हुआ काठ के छोटे से पुल पर होकर तुम्हारे मकान में आया करूँगा। जानती हो, तुम्हारे मकान का नाम होगा 'मानसी'!"

लावण्य बोली—"और तुम्हारे मकान का नाम ?"

अमित ने कहा—जो तुम ठीक समझो, रख दो।"

लावण्य ने सोचकर कहा—"तुम्हारे मकान का नाम 'दीपक' ठीक रहेगा।"

अमित बोला—"दीपक नाम मुझे पसन्द है। नाम के अनुकूल ही मैं अपने घर के ऊपर एक दीपक की आकृति बनवा दूँगा ताकि मिलन की सन्ध्या को लाल और विच्छेद की सन्ध्या को नीली रोशनी प्रकाशित हो सके। काम

से लौटने पर हर सन्ध्या को तुम्हारे पत्र की प्रतीक्षा करूँगा। अगर किसी दिन आठ बजे तक तुम्हारा पत्र न मिला तो पुस्तकों से उलझ कर मन को शान्त करने की चेष्टा करूँगा। चाहे कुछ करूँ किन्तु बिना तुम्हारे बुलाये तुम्हारे घर न जाऊँगा।"

लावण्य बोली—"इसका अर्थ है कि मुझे भी तुम्हारे घर में आने के लिये बुलावे की प्रतीक्षा करनी होगी।"

अमित बोला—"नियम तो सब के लिये एक ही होने चाहिये।"

लावण्य बोली—"अगर तुम्हारे नियम मेरे मार्ग में कण्टक बनें तो तुम सोच कर तो देखो तुम्हारे घर की दशा क्या होगी? तुम्हें इतना सलीका भी तो नहीं जो घर को रहने लायक रख सको। तुम्हारी चतुरता का नमूना शिलांग में देख चुकी हूँ। अगर तुम नियम पालन के लिये कटिबद्ध रहोगे तो मुझे बुरका ओढ़ कर नित्य जाना पड़ेगा।"

अमित ने कहा—"तुम्हारे इस तरह के कार्यों से मुझे कोई दिलचस्पी न होगी। मुझे तो नित्य तुम्हारा निमंत्रण मिलना ही चाहिये। उसमें और चाहे कुछ न हो, कविता की चार लाइनों के होने से ही काम चल जायेगा।"

लावण्य ने पूछा—"क्या इसी तरह मैं तुम्हारे निमंत्रण को पाने की अधिकारिणी नहीं? मुझे तुम अभी से भूलते जा रहे हो?"

अमित बोला—"मैं तुम्हें भी इसी प्रकार निमंत्रण भेजूँगा। महीने में एक बार केवल, पूर्ण चन्द्र की रात्रि को।"

लावण्य ने हँस कर कहा—"मुझे निमंत्रण नियमित रूप से भेजने की ताकीद तो कर रहे हो लेकिन मैं भेजूँगी कैसे? निमंत्रण लिखने का तरीका जो नहीं आता।"

अमित बोला—"सो मैं तुम्हें सिखाये देता हूँ।"

उसने अपनी जेब से डायरी निकाली। उसमें से एक पन्ना फाड़ा और लिखने लगा—

Below gently over my garden
Wind of the southern sea
In the hour my love cometh
And colleth me.

"दक्षिण सागर के मन्द समीर
मेरे प्रियतम के आने पर
उनके मुझे बुलाने पर
मस्त हो बहना, होना मती अधीर।"

लावण्य ने वह कागज लिया और अपने ब्लाउज में खोंस लिया। न उसने वापिस मांगा और न लावण्य ने ही देना चाहा।

अमित ने कहा—"अब तुम्हारे निमंत्रण पत्र का नमूना भी तो देखूं ?"

इतना कह कर उसने अपनी डायरी उसके आगे रख दी और फाउन्टेन-पैन उसके हाथ में थमा दिया।

अमित की डायरी का एक कोरा पृष्ठ खोलकर लावण्य ने लिखा—

"मीता, त्वमसि मम जीवनं, त्वमसि मम भूषणं, त्वमसि मम भव जलधि रत्नम्।"

(मीता तुम्ही मेरे जीवन हो, तुम्ही मेरे भूषण हो, तुम्ही मेरे हृदय सागर के रत्न हो)

अमित बोला—"आश्चर्य है। हम दोनों एक दूसरे को कितना परख चुके हैं यह हमारे लेख से सहज ही पता लग जाता है। मैंने नारी हृदय की और तुमने पुरुष हृदय की बात लिखकर इसे साकार कर ही दिया।"

लावण्य ने कौतूहल से पूछा—"तो फिर निमंत्रण देने के पश्चात् ?"

अमित मन ही मन हवाई किले बनाता हुआ बोला—"संध्या के आगमन के समय जब गंगा की लहरों से इठलाती हुई तेज हवा हमारे बाग के वृक्षों को झकझोरती हुई चलेगी और तुम अपने रंग विरंगे परिधानों को धारण किये अपने मकान के पीछे वाली झील के किनारे मेरी प्रतीक्षा में श्रृङ्गार करती हुई अपने बालों के जूड़े को बांधती होगी, मैं तुमसे मिलन की अभिलाषा हृदय में धारण किये धीरे २ तुम्हारी ओर बढ़ूंगा। मेरे कपड़े तुम्हारी रुचि के अनुकूल शुभ्र होंगे। कभी मेरा तुम्हारा मिलन झील के किनारे होगा, कभी मकान के बरामदे में प्रतीक्षा करते समय, और कभी होगा तुम्हारे शयन कक्ष में। जहां तुम फूलों का हार, चन्दन और पान की गिलौरियां रखे मेरी बाट जोह रही होगी।

पूजा की लम्बी छुट्टियों में हम दोनों ही घूमने जाया करेंगे, किन्तु साथ २ नहीं । अगर तुम पहाड़ों पर जाओगी तो मैं सागर की ओर जाऊँगा । मेरे मन में गृहस्थ जीवन की जो रूप रेखा थी वह तुम्हें सुना दी । अब जरा तुम्हारा दृष्टिकोण भी तो ज्ञात हो ।"

लावण्य ने कहा—"तुम्हारा और मेरा दृष्टिकोण एक ही है और होना भी चाहिये ।"

अमित बोला—"बन्या, किसी बात को केवल मान लेना और उसमें हृदय से रुचि लेना, दोनों बातें एक नहीं, उनमें भिन्नता है ।"

लावण्य ने कहा—"पति की रुचि यदि पत्नी के मन की बात न हो सकी तो एकाकार वाली बात असत्य न हो जायेगी ? मैं तुम्हारी किसी बात से भेद करूँ, यह मेरे लिये सम्भव नहीं ।"

अमित बोला—"मैं तुम्हारा आशय नहीं समझा ।"

लावण्य ने उत्तर दिया—"तुम मेरे पास रह कर भी मुझसे दूर ही हो, नियम द्वारा उसे बनाये रखना उसका प्रमाण है । अपने विषय में मैं इतना कह सकती हूँ कि मेरे पास ऐसी कोई वस्तु नहीं जो तुम्हारे निकट रहकर तुम्हारी दृष्टि को बिना लाज के सहने में समर्थ हो । दो तटों पर दो मकानों की बात जानकर हृदय का भय दूर हो गया ।"

अमित बोला—"बन्या, मैं तुमसे जीत नहीं सकता । जाने दो बगीचे और दो मकान वाली बात । मैं कलकत्ते में ही रहूँगा । पूरा फ्लैट किराये पर लूंगा । उसमें केवल हम तुम दोनों रहेंगे । तुम्हारा और मेरा पलंग एक ही कमरे में रहेगा । तुम्हारे पलंग का नाम होगा 'मानसी' और मेरे का 'दीपक' । एक ओर दीवाल के पास आदमकद आइना होगा जिसके सामने बैठकर तुम अपना श्रृङ्गार किया करोगी और मैं अपनी दाढ़ी बनाया करूंगा । एक ओर पुस्तक रखने की अलमारी होगी और उसके सामने हम दोनों के बैठने के लिये कुर्सियां रखी होंगी । एक ओर गद्देदार सोफा सैट पड़ा होगा और उससे कुछ दूर हट कर काठ का छोटा सा 'पार्टीशन' लगा होगा जिसकी ओट में तुम कपड़े बदला करोगी । निमंत्रण पत्र मैं तुम्हें 'पार्टीशन' के ऊपर की ओर से हाथ बढ़ाकर दे दिया करूंगा, जिसमें लिखा होगा—

"प्रियतमा के साथ छत पर,
हो मेरा जब विहार।
मन्द हो बहना उसी दम,
ऐ, सुभग दक्खिन बयार।।

क्या यह कर्णप्रिय नहीं है, बन्या ?"

लावण्य बोली—"मुझे अच्छा लगा मीता, कहाँ से चुना है तुमने ?"

अमित ने कहा—"मेरा एक मित्र नीलमाधव अपनी प्रेयसी के मधुर स्वप्न देखा करता था। उस समय हम दोनों ने मिलकर ही इस विदेशी कविता को देशी सांचे में ढाला था। एम. ए. पास करके नीलमाधव ने खूब सा दहेज लेकर विवाह कर लिया। वधू आयी, प्रियतमा के साथ विहार भी हुआ, पवन भी चला। किन्तु फिर भी बेचारा इस कविता का उपयोग न कर सका। अन्त में उसने इस कविता को मुझे समर्पण कर दिया।"

लावण्य बोली—"एक बात तो बताओ, क्या तुम्हारी वधू सदा तुम्हारी प्रियतमा ही बनी रहेगी।"

अमित आवेश में मेज पर मुक्का मार कर कहने लगा—"अवश्य, वह सदा प्रियतमा ही रहेगी, रहेगी।"

योगमाया तेज आवाज सुनकर पास के कमरे से निकल कर बोली—"क्या रहेगी, रहेगी ? मुझे जान पड़ता है अमित, मेरी मेज अवश्य न रहेगी।"

अमित ने शान्त होकर कहा—"मौसी, संसार में सच्चाई हमेशा कायम रहेगी। प्रियतमा का मिलना दुर्लभ होता है। यदि दैवयोग से मिल जाये तो वह सदा प्रियतमा ही रहेगी।"

मौसी ने कहा—"कोई मिसाल बताओ तो, समझूं ?"

अमित बोला—"समय आने पर मिसाल भी पेश कर दूंगा।"

मौसी ने हँस कर कहा—"यदि मिसाल कायम होने में देर है तो उतनी देर में भोजन से ही निपट लिया जाये। चलो, खाना खालो।"

१२.

सन्ध्या

भोजन से निवृत होकर अमित ने योगमाया से कहा—"मौसी, मेरे आत्मीय सशंकित हो उठे हैं। अब कलकत्ता लौटना चाहता हूँ।"

योगमाया ने उत्तर दिया—"यह स्वाभाविक ही है। तुम्हारे आत्मीय-स्वजन तुम्हारे परिवर्तनों से भली प्रकार विदित हैं।"

अमित बोला—"यह वह न जानेंगे तो फिर कौन जानेगा? अगर वह मेरी रग रग से वाकिफ न हों तो उन्हें आत्मीय कहना ही बेकार है। मुझ में यहाँ आकर जो परिवर्तन हुआ है उसके आनन्द का वर्णन मैं स्वयम् भी करने में असमर्थ हूँ। नई प्रेरणा और चेतना पायी है मैंने। यदि आपकी आज्ञा हो तो आज लावण्य के साथ जाकर शिलांग को नमस्कार कर आऊँ जिसने मुझे नवजीवन प्रदान किया है।"

योगमाया ने अमित की प्रार्थना स्वीकार कर ली। लावण्य को साथ लेकर अमित चल पड़ा। आगे जाकर दोनों ने एक दूसरे के हाथों को थाम लिया। शरीर से शरीर सटा कर चलने लगे। धीरे २ चलते हुये वह पास वाले कुंज में पहुँचे जहाँ सूर्य की अन्तिम किरणें अनेकों रंगों में खेलती हुयी दृष्टि-गोचर हो रही थीं। पश्चिम की ओर मुँह करके वे दोनों खड़े हो गये। अमित ने अपने हाथों का सहारा देकर लावण्य का मुख अपनी ओर ऊँचा किया। उसकी आँखें मिची हुयी थीं और उनमें से अश्रुधारायें प्रवाहित हो रही थीं। ज्ञात होता था, लावण्य अपने हृदय के भावों को अपने मुख के भावों द्वारा व्यक्त करने में सफल हो गयी हो।

अमित ने प्रेमातुर हो लावण्य को अपनी ओर खींच कर अपने सीने में छिपा लिया। धीरे २ उसकी तन्द्रा टूटी। उसने आँखें खोलकर रुंधे हुये कण्ठ से कहा—"अब लौट चलो।"

अमित ने लावण्य के मुख को एक बार फिर देखा। बिना कुछ कहे उसने एक बार लावण्य के मुख को पुनः अपने सीने से दबाया और घर की ओर लौट चला।

मार्ग में चलते हुये उसने लावण्य को बताया—"कल सुबह ही मैं कलकत्ता के लिये प्रस्थान करूँगा। शायद मुलाकात करने न आ सकूं।"

लावण्य ने उत्सुकता से पूछा—"क्यों ?"

अमित बोला—"आज उचित स्थान पर ही हम लोगों के शिलांग परिच्छेद की इति-श्री हुयी है।"

लावण्य शान्त रही। अमित के हाथ में हाथ डाले चलती रही। उसके हृदय ने नवीन रस का पान किया था। उस रस में वह आनन्द विभोर हो उठी थी। उसने मन ही मन सोचा कि इतने निकट से वह शायद इस रस का पान न कर सके। परन्तु हृदय ने पुनः झकझोरा और उसने भविष्य की कल्पना की। हृदय पटल पर सुहागरात का चित्र अंकित हो उठा। मन में चैन आया। मिलन और विदा के इस मिश्रित रस में डूब सी गयी। उसके मन में आया कि वह अमित से कहे—'मीता, तुमने मुझे प्रेम रस पिला कर धन्य कर दिया'। लाख चेष्टा करने पर भी न कह सकी। नारी हृदय की कोमलता ने उसे ऐसा कहने से रोक दिया।

घर आ गया। अमित ने कहा—"बन्या, इस विदा-वेला के समय तुम भी तो अपने उद्‌गार खोलो, ताकि मैं उसके सहारे भविष्य की बाट जोह सकूँ।"

लावण्य ने थोड़ी देर सोचा और बोली—

"कुछ सुख न तुमको दे पाया, मुक्ति फल को त्याग चला।
इस चन्द्र-किरण-मयी रजनी में बस शेष यही अवरुद्ध गला॥
शेष कहां विनती और दीनता है ? समय का भी कुछ ज्ञान नहीं।
है नहीं अधीना का क्रन्दन और वह अभिमान भरी मुस्कान नहीं॥
फिर कर भी देखना नहीं मुझे आगे है पुष्पों की डाली।
भर दी है माँग प्रिये की मैंने, निज मौत की देकर लाली॥"

अमित बोला—"बन्या, तुमने इस कविता को कह कर अच्छा नहीं किया। ऐसा तुम्हें कभी नहीं करना था। तुम अपनी इस कविता को अभी वापिस ले लो।"

लावण्य ने गम्भीरता से कहा—"मीता, अधीर मत बनो। जो कुछ भी मैंने कहा है, सच है। अग्नि में तपा हुआ प्रेम, आनन्द की माँग नहीं करता।

वह स्वयम् मुक्त होने के पश्चात् ही मुक्ति प्रदान करता है। उससे क्लेश नहीं होता, मलिनता नहीं आती। इससे अधिक दिया भी क्या जा सकता है ?"

अमित बोला—"बन्या, पहले यह बताओ; यह कविता तुम्हारे हाथ कहाँ से पड़ी ?"

लावण्य बोली—"यह कविता रवीन्द्रनाथ की है।"

अमित बोला—"मैंने तो उनकी किसी पुस्तक में इसे नहीं देखा ?"

लावण्य बोली—"अभी यह तो प्रकाशित ही नहीं हुई।"

अमित ने पूछा—"फिर तुम कैसे इसे पा सकीं ?"

लावण्य ने समझाया—"मेरे पिता का एक शिष्य था। पिताजी ने उसे शिक्षा दी थी और वह कविता से भी प्रेम करता था। अपने कविता प्रेम की प्यास बुझाने वह कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ के पास भी जाता था और जब मौका मिलता, उनकी कापी में से अपनी मन-पसन्द कविता ले आता था।"

अमित ने कहा—"वहाँ लाकर उन्हें तुम्हारे चरणों में डाल देता था।"

लावण्य ने कहा—"इतना तो उसमें साहस ही न था। लेकिन वह इतना अवश्य करता था कि इन कविताओं को ऐसे स्थान पर छोड़ देता जहाँ से मैं सहज ही उन्हें पा सकूं।"

अमित ने पूछा—"उस पर तुमने भी दया की थी ?"

लावण्य ने कहा—"दया करने का सुअवसर कभी हाथ ही न आ सका। भगवान से प्रार्थना करती रहती हूँ कि वह उस पर दया करता रहे।"

अमित बोला—"जान पड़ता है जो कविता अभी तुमने सुनाई है वह उसी अभागे के मन की बात है।"

लावण्य बोली—"यह तो ठीक ही है।"

अमित ने पूछा—"आज इस समय तुम्हें उसकी याद ने कैसे सताया ?"

लावण्य बोली—"इसका कारण तो शायद मैं भी नहीं जानती। लेकिन इतना याद है कि उस कविता के साथ एक टुकड़ा और था। ठीक २ तो याद नहीं, पर उसके बोल हैं—

ए सुन्दर, अपने इन नैनों में
क्या केवल आंसू लाये हो।

निज हृदय में आज छिपा कर,
तुम विरहानल ले आये हो।
सुलग-सुलग कर विरहानल,
प्रेमी को अति तड़फाता है।
विरहानल जो तेरे उर में है,
क्या तुमको भी कभी जलाता है।
विरहानल धधक-धधक कर,
क्या अब फूटेगा, अब फूटेगा।
आवेश बाँध जो मन में है,
क्या टूटेगा, अब टूटेगा।

अमित ने लायण्य का हाथ दबाते हुए पूछा—"बन्या, मैं ईर्षा नहीं करता, परन्तु यह जानना चाहता हूँ कि आज यकायक उस लड़के का ध्यान तुम्हारे मन में कैसे आ गया ? आज ही तुम्हें उसकी कविताओं की याद क्यों आयी ? यह सोचकर मेरे मन में भय की रेखा खिंच गई है।"

लावण्य ने उत्तर दिया—"जब वह हमारे घर से विदा हो गया, तो उसकी मेज पर रवीन्द्रनाथ की अप्रकाशित कविताओं की एक कापी मिली थी। उसी में अन्य कविताओं के साथ यह दोनों कवितायें भी थीं। तुम भी आज मुझसे विदा हो रहे हो, शायद इसीलिये मुझे विदा की यह दोनों कवितायें सहसास्मरण हो आयीं।"

अमित ने पूछा—"क्या तुम इस विदा वेला की उपमा उस विदा वेला से करना चाहती हो ?"

लावण्य ने कहा—"तुम्हारी इस बात का उत्तर शायद मेरे पास नहीं है। मैं तुम्हें यह बता देना चाहती हूँ कि जो कवितायें मुझे इस अवसर पर याद थीं, वह मैंने तुम्हें सुना दीं। यह मैं तुम्हें बता देना चाहती हूँ कि इसके सिवा और कोई कारण नहीं है।"

अमित ने अपनी आदत के अनुसार रवीन्द्रनाथ का विरोध प्रदर्शन करते हुये, लावण्य को एक छोटा सा भाषण दे डाला। लावण्य तर्क में पड़ना नहीं

चाहती थी। अतः बातों का रुख पलटने के विचार से उसने कहा—"मीता, देर हो रही है। क्या तुम अपना सन्देश मुझे न दोगे ?"

अमित ने कहा—"बन्या, मैं रवीन्द्रनाथ की कविता न सुना सकूँगा। किसी और की कविता सुनकर तुम्हें क्रोध तो न आयेगा ?"

लावण्य ने कहा—"तुम निडर होकर अपनी अविता सुना सकते हो। मैं कदापि क्रुद्ध नहीं होऊँगी।"

अमित ने लावण्य के माथे पर लटकी हुई अलकों को ठीक करके, दर्द भरे हुये स्वर में सुनाना प्रारंभ किया—

"सुन्दरी, तुम तो मेरी हो शुक-तारा,
दूर गगन में चम-चम कर,
वहीं से दीप्तमान करती हो समस्त गिरि-क्षेत्र को,
जब भी तुम्हारी निशा जाये बीत,
तब ही दर्शन दे दिया करना मार्ग-च्युत राही को।"

समझ में आया बन्या, चन्द्रमा अपनी सजनी शुक-तारिका को बुला रहा है। उसे रातों से अरुचि हो गई है और इस कारण वह रात्रि की संगिनी को चाहता है।

क्षितिज जहां धरती-आकाश मिलते हैं गले,
उसी क्षितिज का हूँ मैं अर्ध-सुप्त राकेश मैं।
उस गहन-तम वारी अँधियारी रात का,
अर्ध विकिति तेज वाला हूँ शुभ्र आवेश मैं॥

चन्द्रमा की थोड़ी-सी चन्द्र किरणों ने अँधेरी रात में प्रगट होकर प्रकाश उत्पन्न कर दिया है, बस इसी का उसे खेद है। इसी के कारण वह समस्त रात में घुमड़-घुमड़ कर क्रन्दन कर रहा है। कैसी है कल्पना! मेरी राय में तो विशिष्ट है।

मेरे लिये वह बिछावन
आज निन्द्रित अम्बर
ने बिछाया है।

इस निद्रा को स्वल्प
करके हृदयावेश ने
स्वप्न में बजायी काया है।

इस प्रकार हल्के होकर जीने में भी बोझ कुछ कम नहीं है ? जिस नदी का जल सूख गया है, उसकी उस मन्द गति में बहते रहने में आकुलता होती है। इसी कारण वह पुनः भाव व्यक्त करता है—

हुई यात्रा पूर्ण हमारी,
मन्द गति से होगया पार।
चूर हो गये अङ्ग हमारे,
अवरुद्ध हुआ स्वर बारम्बार।

प्रश्न यह है कि क्या इसी थकान में उसका अन्त है ? नहीं, उसे पुनः अपने को स्वस्थ करने की चेतना हुई है। दिशाओं के पार उसे किसी की पग-ध्वनि सुनाई देती है—

ऐरी सुन्दर सखी, रात्रि न हो पूर्ण,
उससे प्रथम चली आना तू।
स्वप्न की अपनी बात,
जो अधूरी रह गई उसे पूरी बताना तू॥

जो कल की बात अधूरी रह गई वह शायद आज पूरी जाये, इसी बात की आशा है। जो कानों में गूंज रहा है, वह इस जगते हुये संसार का शोर है। उसकी पथ-प्रदर्शिका हाथ में जलता हुआ दीपक लेकर आने की चेष्टा करती है—

भूल गया जो स्वयम् को
रात के गहन अँधकार में,
सम्हाल लेना कर पकड़
रखना उसे प्रभात तक,
करना सचेत उसे तब।
जहां निद्रा भी स्वयम् मग्न है
बजता है जहां विश्व-चंग है,

गहाई वहीं वीणा भी
अर्ध-सुप्त चन्द्र ने,
तान है छेड़ी इन्द्र ने ।

बन्या, इस कविता में वर्णित अभागा चन्द्रमा, मैं ही हूँ । कल ही कलकत्ते जा रहा हूँ, किन्तु फिर भी मैं तुम्हारे हृदय को शून्य नहीं रखना चाहता । भविष्य के उज्ज्वल स्वप्न तुम्हें धरोधर में दिये जाता हूँ ताकि तुम्हारा मन शान्ति पाता रहे । देखा तुमने, मेरी कविता तुम्हारे रवीन्द्रनाथ की भाँति विलाप नहीं है ।"

लावण्य बोली—"मीता, रवीन्द्रनाथ की बात कह कर तुम नाहक अपना हृदय दुःखी करते हो । अगर तुम्हें अच्छा नहीं लगता तो भविष्य में मैं तुम्हें अपनी कवितायें नहीं सुनाऊँगी ।"

अमित बोला—"ऐसा जुल्म मत करो । यदि हम आपस में सहयोग भी नहीं कर सकते तो विवाह का क्या लाभ है ?"

लावण्य बोली—"तुम्हारी रुचि जिसके साथ मेल नहीं खाती, उससे तुम्हारा मन बुरा होने लगता है । मैं सब का आदर करती हूँ ।"

अमित ने कहा—"बेकार ही मैंने तर्क में पड़कर सारा गुड़-गोबर कर डाला ।"

लावण्य ने कहा—"नहीं, ऐसी तो कोई बात नहीं । स्पष्ट कहने के बाद जो शेष रहता है, वही तो ग्राह्य है । फिर हम भी तो भिन्न नहीं जो एक दूसरे को क्षमा न कर सकें ।"

अमित ने कहा—"मेरे मन में आ रहा है कि मैं इस समय तुम्हें अंग्रेजी की सुन्दर कवितायें सुनाऊँ ।"

लावण्य ने कहा—"नहीं, इस समय अंग्रेजी कवितायें रहने दो । उन्हें घर पर सुनाना । आज इस सन्ध्या समय में तुम्हारे निवारण चक्रवर्ती के अलावा और किसी की कविता नहीं सुनूँगी ।"

अमित प्रसन्नता से झूम कर बोला—"निवारण चक्रवर्ती, जिन्दबाद ! बन्या, मैं निवारण को तुम्हारी सभा का राजकवि बना दूँगा । सिवाय तुम्हारे और किसी को वह अपनी कविता का रस-पान ही न करा सकेगा ।"

लावण्य ने कहा—"यदि उसने तुम्हारा कहना न माना ?"

अमित ने सहज भाव से कहा—"नहीं मानेगा तो कान पकड़ कर कविता क्षेत्र से निकाल दिया जायेगा।"

लावण्य ने कहा—"उसका जो होगा सो देखा जायेगा। इस समय तो तुम उसकी कविता का पाठ करो।

अमित सुनाने लगा—

तुम कितना धीरज धारण कर,
दिन-रैन पास ठहरी हो।
अपनी स्मृति पास मेरे
हर बार छोड़ती गई प्रिये
मेरे इस मस्तिष्क के मार्ग में
जैसे होता है मकरन्द फूल में।

आज जब
है जाना दूर तब
दे जाऊँगा तुम्हें दान
जो है तुम्हारा विजय गान।

जीवन में मेरे जो
बेकार हुये हैं सो
अनेकों ही उत्सव,

विरहाग्नि जला नहीं,
जाकर विलीन होगई
समस्त आशा धूम्र बन
शून्य कर गईं मेरा मन।

पुनः पुनः देखा है
प्रदीप्त दीप लौ ने
अचेतन अर्ध-रात्रि के
लगा हल्का सा टीका मैं।

चिन्ह तक भी बचा नहीं
जो लगा था टीका भाल में।
अब तुम्हारा आना
होगा, प्राण होमने वाला
अभिमान के साथ जलेगा।
मेरा बलिदान फलेगा।
बलि किया दिन समस्त
तुम्हारे ही लिये प्रिये
करो स्वीकार अब मेरा प्रणाम
हो गया है पूरा जीवन परिणाम।
सस्नेह स्पर्श करना
मेरे इस प्रिय पात्र को।
तुम्हारे ही लिये जहां
मेरा है बिस्तर वहां,
बुलाना मुझको प्यार से,
कम से कम दे देना स्थान तुम
अपने हृदय में मेरी याद को।

१३.

आज सुबह से ही लावण्य का मन किसी काम में नहीं लगा। अमित ने कह दिया था कि शिलांग छोड़ते समय वह किसी से भेंट नहीं करेगा, इसी कारण आज लावण्य घूमने भी नहीं जा सकी। अमित का घर मार्ग ही में पड़ता था, अतः भेंट हो जाने की आशंका थी। वह अमित की इस प्रतिज्ञा को तोड़ना नहीं चाहती थी। इन्हीं तमाम कारणों से वह अमित से भेंट करने की इच्छा होते हुये भी उससे मिलने न जा सकी। मन मार कर उसने एक पुस्तक

उठायी और उसे लेकर एक पेड़ की छाया में जा पड़ी। यद्यपि किताब के पन्ने वह उलटती रही मगर उसने पुस्तक का एक शब्द भी नहीं पढ़ा। यह केवल भुलावा था। दूसरों पर मन की व्यथा जाहिर न हो सके, इसीलिये उसे यह करना पड़ा। उसका मन नाना प्रकार के विचारों में डूबा था। कल के प्रेम-मिलन से उसका हृदय जितना प्रसन्न था, आज अमित से विछोह के कारण उतना ही खिन्न था। उसके मन में रह २ कर यह शंका उठती कि अमित का स्वभाव ही ऐसा है कि वह जहां से गुजर जाता है वहां लौटने का नाम ही नहीं लेता। इसी विचार ने उसके हृदय को खिन्न बना दिया था। वह नाना प्रकार की शंकायें करती, उनका समाधान भी करती और पुन: उनमें उलझ जाती।

नौ बजे के लगभग उसके कानों में अमित की आवाज आयी। वह योगमाया के कमरे में 'मौसी जी' को पुकार रहा था। योगमाया शायद अभी सन्ध्या पूजा से निवृत होकर भण्डार में से भोजन की सामग्री निकाल कर नौकरों को दे रही थीं इसी कारण अमित को इतना पुकारने की आवश्यकता हुयी थी। अमित के कलकत्ता जाने वाली बात के कारण उनका हृदय भी पीड़ित था। उन्होंने मन ही मन लावण्य की पीड़ा का भी अनुमान लगा लिया था और शायद इसी कारण लावण्य को भी नहीं बुलाया था। वह समझ गयी थीं कि प्रेमी के विछोह के कारण आज लावण्य को एकान्त में रहना ही आवश्यक है ताकि अपने अश्रुओं द्वारा वह अपने हृदय के भावों को कह कर अपने मन की व्यथा को हल्का कर सके। लेकिन लावण्य के कानों में जैसे ही अमित की आवाज आयी वह चोट खायी हुई नागिन की भांति उसी क्षण उठ कर खड़ी हो गई। योगमाया के कमरे की ओर अमित से मिलले की आतुरता में भागी। उधर उस समय तक योगमाया भी अमित की आवाज सुनकर भण्डार से निकल कर अमित के पास पहुची।

लावण्य के पहुँचने से पहले ही योगमाया अमित के पास आ चुकी थी। उसने आते ही अमित से कहा—"बेटा, खैर तो है। तूने तो चीख २ कर सारा मकान सिर उठा रखा है।"

अमित ने कहा—"मौसी खैर ही होती तो फिर इतना इस तरह चीखने की आवश्यकता ही क्या थी? मैंने कलकत्ता जाने की सारी व्यवस्था पूर्ण करके

अपना सारा सामान बांधकर स्टेशन भेज दिया था। डाक देखने के लिये पोस्ट-आफिस गया तो वहां मुझे तार मिला कि सिसी, केटी और नरेन आज ही शिलांग पहुँच रहे हैं।"

लावण्य ने भी दोनों की बात सुन ली थी। वह शान्त ही खड़ी रही उसने बीच में बोलना उचित नहीं समझा।

योगमाया ने अमित की बात सुन कर कहा—"इसमें चिन्ता की कौन-सी बात है ? वह लोग आ रहे हैं तो ठीक ही है। रेस के मैदान के पास वाला मकान खाली है। उसका इन्तजाम कर लो।"

अमित ने कहा—"उन लोगों के ठहरने के इन्तजाम करने की मुझे आवश्यकता ही नहीं पड़ेगी। पहले ही तार द्वारा उन्होंने अपने ठहरने के लिये एक होटल की व्यवस्था कर ली है।"

योगमाया ने कहा—"सो तो ठीक ही है बेटा, लेकिन तुमको भी अपना निवास स्थान बदलना ही पड़ेगा। अपनी बहिन और अपने अभिन्न मित्रों के सामने तुम उस खण्डहर में कैसे रह सकोगे ? वह तुम्हें वहाँ देखकर क्या सोचेंगे ?"

अमित ने कहा—"उस झोंपड़ी से मेरा सामान जा चुका है। अब तो मुझे भी किसी होटल ही में अपना आसन जमाना ही पड़ेगा।"

यद्यपि इन बातों में कोई ऐसी बात स्पष्ट नहीं थी जिससे चिन्ता की जा सके किन्तु फिर भी लावण्य के चहरे का रंग बदल सा गया। उसके विचार में पहली बार ही आज अमित के उस समाज की कल्पना आयी जिसके पास तक पहुँचना भी लावण्य के लिये अति कठिन था। भविष्य की आशंका से उसका हृदय कांप गया। अमित के कलकत्ता जाने वाले दुःख से बढ़ कर आज अमित के होटल जाने की बात सुनकर उसे दुख हुआ। उसकी कल्पनाओं के महल यकायक धूल धूसरित होते दिखाई पड़े।

लावण्य के मुरझाये चहरे पर एक नजर डाल कर अमित ने कहा—"चाहे मैं होटल छोड़ कर जहन्नुम भी क्यों न चला जाऊँ, मौसी, किन्तु मेरा असली घर तो यही है।"

योगमाया को अमित की बौखलाहट व्यर्थ सी लगी। बहिन के आने की बात सुनकर अमित को इतना परेशान नहीं होना चाहिये था, ऐसा उनका मत

था। किन्तु अमित जानता था कि रूसी और उसके दल का आना किसी खतरे की घंटी अवश्य है। वह कभी नहीं चाहता था कि रूसी अथवा उसके दल का कोई आदमी आकर उसके आनन्दमय संसार में बाधा उत्पन्न करे, इसी कारण अपने पत्रों द्वारा वह उन लोगों को निरन्तर आने से रोकता रहा था। चाहे योगमाया ने अमित की इस घबराहट का अर्थ न समझा हो मगर लावण्य को अमित के मनोभाव जानते देर न लगी। उसका हृदय भावी आशंकाओं के कारण कांपने लगा।

योगमाया उन दोनों को कमरे में छोड़ कर चली गयी, तब अमित ने लावण्य से कहा—"यदि तुम्हें कोई विशेष काम न हो तो थोड़ी देर घूमने चला जाये।"

लावण्य ने अन्यमनस्क भाव से कहा—"इस समय मेरी इच्छा बिलकुल घूमने जाने की नहीं है।"

योगमाया पास ही थी। उसने पुनः कमरे में प्रवेश करके लावण्य से कहा—"नहीं, कोई बात नहीं। बेटी, जा घूम आ। तेरा मन बहल जायेगा।"

लावण्य ने बेरुखी दिखाते हुये उत्तर दिया—"मां, मुझे सुरमा को भी पढ़ाना है। इधर बहुत दिनों से उसकी पढ़ाई में अनेक कारणों से ढील रही है। कल ही रात मैंने फैसला किया था कि मैं उसकी पढ़ाई पूरी करूंगी। आज ही मैं अपने इस नियम को भंग करने के लिये तैयार नहीं हूँ।"

योगमाया लावण्य के जिद्दी स्वभाव से परिचित थी। वह जानती थी कि यदि एक बार किसी बात के लिये भी वह न कर देती है तो उसके लिये हां कराना अति दुर्लभ हो जाता है। इसी कारण योगमाया ने उसे अधिक कहना उत्तम नहीं समझा। वह उन दोनों को उसी जगह छोड़ कर पुनः दूसरे कमरे में चली गयी।

अमित ने भी भारी हृदय से लावण्य को लक्ष्य करते हुये कहा—"ठीक है, तब फिर मैं अपने कर्त्तव्य पथ की ओर अग्रसर होता हूँ।"

लावण्य ने उसको कोई उत्तर नहीं दिया। दोनों साथ २ बरामदे में निकल आये। तब अमित ने पेड़ों के झुरमुट से चमकने वाले अपने खण्डहर मकान की ओर संकेत करके कहा—"बन्या, वह सामने पेड़ों के झुरमटों के बीच मेरी

कुटिया चमक रही है। मैंने शायद अब तक तुम्हें नहीं बताया कि अपनी प्रेम स्मृति को सदैव स्मरण रखने के लिये मैंने उसे खरीद लिया है। मालिक मकान ने मन मानी कीमत वसूल की हैं, किन्तु प्रेम की स्मृति सदा कायम रहे यही सोच कर उसकी कीमत मुझे बेजा नहीं जान पड़ी। जिस सुख को मैंने वहां पाया है वह अब तक सबकी नजरों से छिपा है और आशा है भविष्य में भी छिपा ही रहेगा।"

लावण्य को अमित के अन्तिम वाक्य के कारण थोड़ा दुःख हुआ। वह विषादपूर्ण स्वर में बोली—"समाज की नजरों से किसी बात को बचा रखना मुश्किल है। इससे अच्छा ही है कि वह सब जान लें। जान जाने के बाद असम्मान का प्रश्न तो नहीं उठेगा।"

अमित ने लावण्य की बात का कोई उत्तर नहीं दिया। उसने बातचीत का रुख बदलने की इच्छा से कहा—"बन्या, विवाह के बाद मेरी इच्छा है कि हम लोग कुछ दिन इस मकान में ही आकर रहें। मेरी कल्पनाओं का रंग महल यही है। तुम्हारा 'मिताई' नाम इसी को उचित जँचता है।"

लावण्य ने कहा—"मीता, आज तक तुम उस मकान में आराम से रह सके हो। आज ही तुमने उसे खाली किया है। लेकिन मैं यह जानती हूँ कि कल तुम उसमें जाकर नहीं रह सकोगे। तुम्हीं ने तो एक दिन कहा था, पहली साधना गरीबी की होती है, दूसरी होती है ऐश्वर्य की और अन्तिम साधना यद्यपि तुमने नहीं बताई थी किन्तु मैं जानती हूँ वह है त्याग की।"

अमित ने कहा—"बन्या, यह भाव तुम्हारे अपने नहीं। यह तुम्हारे कवि रवीन्द्र बाबू के भाव हैं। 'ताजमहल' के बारे में उनका विचार है कि शाहजहां अपने ताजमहल से भी आगे बढ़ गया। इस बात को जान कर ज्ञात होता है कि तुम्हारे कवि के हृदय में 'एव्यूलूशन' वाली बात नहीं आयी। विश्व में सृष्टि करने के लिये ही प्राणी पैदा है वह अपनी आंखों से दीखने वाली समस्त वस्तुओं से आगे बढ़ जाना चाहता है। अपने मन के मुताबिक सृष्टि करने के बाद उसका हृदय शान्त हो जाता है तो सृष्टि की आवश्यकता उसे शून्य प्रतीत होती है। संसार में मुमताज और शाहजहां के प्रेम की धारा अविरल गति से बहती चली आ रही है और बहती ही रहेगी। उसका विशेष कारण

यही है कि उन दोनों का प्रेम आज मानव जाति के प्रेम का प्रतीक बन कर रह गया है। इसीलिये वह शून्य न हो सका। निवारण चक्रवर्ती ने तुम्हारे कवि रवीन्द्र की कविता 'ताजमहल' के उत्तर में 'सुहागरात' नामक एक कविता लिखी है। वह कविता है—

सघन काली रात का,
जब अँधेरा बीत जायेगा,
प्रातः वेला में,
जब नया दिवस आयेगा,
सत्य कहता हूँ,
प्रिये, मुझसे न बिछुड़ा जायेगा।

अरी ओ, सुहागरात,
रूप तेरा है विशाल,
विच्छोह के समय,
तू दुःख देती है कराल।

बनती और बिगड़ती,
आई तू अनेक बार,
तोड़ती रहती है तू,
वर बधू के कण्ठ हार।

नित्य नये रूप में,
रचती है उत्सवों का खेल,
कराती ही रहती है,
नव वर-बधू का मेल।

तू सदा जवान है,
और सोचना व्यर्थ है,
कल के जाने वालों से,
तुझको न कोई अर्थ है।

आते ही रहते हैं,
सदा लोग तेरे द्वार पर,

कौन है ऐसा बता,
रुक जाये तेरी पुकार पर ?

अरी ओ, सुहागरात,
प्यार क्या मरता कभी ?
तू भी अमर है विश्व में,
क्या जानते नहीं हैं सभी ?

बन्या, तुम्हारे कवि रवीन्द्र अतीत की बात कहते हैं और मेरा कवि भविष्य के मनमोहक चित्र प्रस्तुत करके, जीवन में नवीन स्फूर्ति प्रदान करता है। क्या यह सच नहीं कि एक दिन हमको भी द्वार खटखटाना पड़ेगा ? उस समय सम्भव है द्वार न खुले ?"

लावण्य ने कातर स्वर में कहा—"मीता, मैं जाती हूँ कि तुम्हीं निवारण चक्रवर्ती हो। जो कुछ तुम उसके मुख से कहलवाते हो, वह तुम्हारे अपने ही भाव हैं। तुम्हारे ही दिल का स्पन्दन है। भगवान के लिये हमारे प्रेम को अभी पनपने दो। अभी से उसकी समाधि का निर्माण मत करो।"

अमित ने अनेकों बातें लावण्य से कहीं। उनको सुनकर वह अमित के बढ़ते हुये उद्वेग को समझ सकी और साथ ही जान भी गई कि वह किसी भाँति उन्हें दबाने की चेष्टा भी कर रहा है। अमित भी अपनी कमजोरी समझ गया। वह यह भी जान गया कि लाख चेष्टा करने पर भी वह अपने उद्‌गारों को लावण्य से छिपाने में असफल ही रहा है। यह विचार आते ही वह खिन्न हो गया। बातचीत का रुख बदलने के लिये उसने कहा—"बन्या, अब मुझे चलना ही चाहिये; होटल आदि की व्यवस्था जो देखनी है। इधर निवारण चक्रवर्ती की छुट्टी की अवधि समाप्ति पर है।"

लावण्य का हृदय भावी आशंकाओं के कारण उद्विग्न हो उठा था। वह अब उन्हें हृदय में छिपा नहीं पा रही थी। आँखों में आँसू छलक आये। उसने रुद्ध कण्ठ से कहा—"मीता, मैं तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ, तुम मुझसे विलग मत होना और कभी विलग होने का अवसर आ भी जाये, उस समय रूँठ कर मत जाना। सदैव मुझे क्षमा करते रहना।"

उसका हृदय भर आया था। अमित के सामने वह खुलकर रोना नहीं चाहती थी। अतः अपने आँसू छिपाने की इच्छा से वह दूसरे कमरे में चली गई। अमित पहले कुछ देर तक वहीं खड़ा खड़ा सोचता रहा। फिर भारी हृदय लिये धीरे-धीरे बाहर की ओर चल दिया। अखरोट के छिलके और रवी बाबू की 'बलाका' पुस्तक को यूकिलिप्टस के नीचे पड़ा देख, वह समझ गया कि आज सुबह से ही उसकी वन्या बैठी मधुर मिलन की कल्पनायें कर रही थी। वह भी उस पुस्तक को हाथ में लेकर वहीं बैठा गया। एक बार जी में आया कि पुस्तक को जाकर लावण्य को दे आये कि फिर न जाने क्या सोचकर उसने उस पुस्तक को जेब में रख लिया। बैठा-बैठा सोचता रहा। समय निकलता चला गया। वह अपने आवश्यक कामों के लिये होटल जाना भी भूल गया।

लावण्य का मन स्थिर हो गया था। वह कमरे से निकल कर बरामदे में आई। उसने जब अमित को पेड़ के नीचे बैठा देखा तो अवाक् रह गई। मन में टीस उठी और वह अमित के पास आने के लिये मजबूर हो गई। पास आकर बोली—"मीता, तुम क्या सोच रहे हो ?"

अमित ने कहा—"जो आज तक सोचा था, आज उससे उल्टा सोच रहा हूँ।"

लावण्य ने कहा—"तुम क्या सोच रहे हो, जरा मैं भी तो सुनूँ ?"

अमित बोला—"तुम्हें हृदय में लिये अनेकों स्थान चुन चुका हूँ। कभी गंगा के किनारे बगीचे की बात, कभी पहाड़ पर रहने की, कभी शहर में रहने की, किन्तु आज सोचता हूँ कि तुम को साथ लेकर ऐसी यात्रा पर निकल पड़ूँ, जिसका कोई अन्त ही न हो। मेरी पीठ पर, थैले में जीवन की आवश्यकता का सामान बँधा होगा, हाथ में नुकीला भाला होगा और साथ में तुम होगी। उस समय तुम्हारा 'वन्या' नाम भी सार्थक हो उठेगा। यात्रा में होंगे हम तुम केवल दो। न कोई घर का होगा और न होगी और कोई भीड़-भाड़। मुझे आज महसूस हो रहा है, तुम मुझे घर से बाहर निकल कर इसी भाँति जीवन यापन करने का इशारा कर रही हो।"

लावण्य ने हँस कर कहा—"कोई बात नहीं। बगीचे वाले मकान और नगर वाले फ्लैट की कल्पनाओं को त्याग कर अगर तुम मुझे इस तरह जीवन बिताने को कहोगे तो भी मैं तुम्हारा साथ देने को तैयार हूँ। दिन भर यात्रा करने के बाद हम दोनों रात्रि के समय दो विभिन्न पन्थशालाओं में आराम कर सकते हैं।"

अमित बोला—"दो विभिन्न पन्थशालाओं की शायद कोई आवश्यकता न रहेगी। गति ही तो जीवन है। चलते रहना ही, विश्व का नियम है। उससे नव-जीवन मिलता है। स्थिर होने पर बुढ़ापा आता है।"

लावण्य ने आश्चर्य से पूछा—"किन्तु, अचानक यह विचार तुम्हारे दिमाग में कैसे आया, मीता ?"

अमित ने उत्तर दिया—"बन्या, सम्भव है मैं तुम्हें बताना भूल गया कि प्रेमचन्द-रामचण्द स्कालर शोभनलाल ने मुझे एक पत्र लिखा था कि वह भारत के प्राचीन ऐतिहासिक मार्गों की खोज करना चाहता है। उसकी इच्छा अतीत की खोज करने की थी। आज मैं भविष्य की खोज करने की बात सोच रहा हूँ।"

शोभनलाल का नाम सुनते ही लावण्य का हृदय काँपा। उसकी जिज्ञासा बढ़ी। उसने कहा—"मैंने अपनी एम. ए. की परीक्षा शोभनलाल के साथ ही दी थी। उसके बाद मैंने उसके विषय में कुछ नहीं सुना। आजकल वह क्या करता है, जानने को जी चाहता है ?"

अमित ने विस्तारपूर्वक कहा—"शोभनलाल को किन्हीं सूत्रों से ज्ञात हो गया, अफगानिस्तान के प्राचीन नगर कपिश को जो मार्ग कभी उपयोग होता था और जिस रास्ते होकर ह्वानसुआंग ने भारत यात्रा की थी, उसकी खोज करने वाले फ्रांसीसी दल के कुछ लोगों से मेरी जान पहचान है। वह भी उस मार्ग की खोज करना चाहता था, अतः उसने मुझे पत्र लिखा कि मैं अपने फ्रांसीसी मित्रों से उसका परिचय करा दूं ताकि वह उनसे जानकारी प्राप्त कर सके। मैंने उसकी सहायता के लिये उन लोगों को पत्र लिख दिये, किन्तु दुःख है कि भारत सरकार ने उसे इस कार्य की अनुमति नहीं दी। इसके बाद उसे नई धुन सवार हुई। उसने बौद्ध धर्म के प्रचार में उपयोग किये गये मार्गों

की खोज करनी चाही; हिमालय और कुमायु के पहाड़ों को छान डाला। मुझे उसकी बुद्धि पर तरस आता है। वह पुस्तकों के ज्ञान पर अपने आपको मिटाये डाल रहा है। उसके इन व्यवहारों से ज्ञात होता है कि उसका हृदय टूट चुका है और वह इसी कारण निरन्तर यात्रा में रह रह कर अपने हृदय के बोझ को हलका करना चाहता है।"

लावण्य ने उत्सुकता से पूछा—"सो कैसे जाना ?"

अमित बोला—"एक दिन शोभनलाल मेरे साथ बातें कर रहा था। धीरे-धीरे बारह बज गये। चाँद निकल आया। उसके हृदय में प्रेम की हूक उठी। उसने अपने प्रेम की बात बतानी चाही, मगर उसमें शक्ति न रही। चोट खाये हुये पंछी की भाँति तड़प कर रह गया, कुछ बता न सका। फौरन घर चला गया। उसकी इन बातों से मैं सहज ही अनुमान लगा सकता हूँ कि उसके हृदय पर कभी प्यार का गहरा आघात् लगा है। इसी कारण वह सदैव घूम फिर कर ही अपना ग़म गलत करने की चेष्टा करता है।"

लावण्य का मन शोभनलाल की व्यथा सुनकर चंचल हो गया। उसके हृदय पर आघात् लगा। कुछ कह न सकी। मन ही मन उठते हुये तूफान को दबाने की चेष्टा करने लगी।

अमित ने कहा—"बन्या, आज तुमने मुझे उसी मार्ग का अनुसरण करने की प्रेरणा दी है।"

लावण्य ने जिज्ञासा से पूछा—"कैसे, मीता ?"

अमित बोला—"मैंने मन ही मन अपना घर बनाने की अनेकों कल्पनायें कीं, तुम्हें बताईं। तुम्हारी सबेरे की बातों से ज्ञात होता है कि वह तुम्हें पसन्द नहीं। सोचता हूँ घर में रख कर शायद मैं तुम्हें सुखी न रख सकूँ। तब फिर यात्रा में अवश्य तुम्हें सुख मिलेगा। इसी कारण आज भ्रमण की बात सोचने को मजबूर हो गया।"

लावण्य अधिक देर ठहरना नहीं चाहती थी। अमित के सम्मुख ठहरना उसे खलने लगा, अतः खड़ी होकर बोली—"मीता, उठो! अब बहुत देर हो गई।"

१४.

धूमकेतु

आज पहली बार अमित को पता लगा कि उसके और लावण्य की प्रणय-कथा को शिलांग के रहने वाले तमाम बंगाली जान गये हैं। युवकों की सभा में इस विषय को लेकर अनेकों बार चर्चायें चल चुकी हैं। इसका मुख्य कारण रहा कुमार मुखर्जी।

कुमार मुखर्जी कलकत्ता में अटर्नी था। उसका आना जाना प्रायः उन सभी स्थानों में था जहाँ सिसी, लूसी आदि आती जाती थीं। इसी कारण वह अमित को जानता था और उसके विचारों से भी परिचित था। थोड़े दिनों के लिये वह भी शिलांग हवाखोरी के वास्ते आया था। शिलांग के बाजारों तथा क्रीड़ा-स्थलों पर अनेकों बार उसने अमित को लावण्य के साथ देखा था, किन्तु अमित की नजरों से वह सदा अपने को बचाये रहा। लूसी के प्रति कुमार मुखर्जी का विशेष आकर्षण था, किन्तु लूसी उसे तनिक भी पसन्द नहीं करती थी। लूसी ही क्या उसके संग-साथ की कोई लड़की उसकी ओर आकृष्ट नहीं थी। सम्भव है इसी कारण वे उसके नाम को अपभ्रंश करके 'कुमार मुख' अथवा 'मार मुख' कहना उत्तम समझती थीं। उसके पुरुष मित्र उसे धूमकेतु करते थे। इसका कारण यह था कि वह सदा अपने मुख में एक मोटा सिगार दबाये रखता था, जिसमें से निरन्तर धुँआ निकलता रहता था। अमित ने कभी धूमकेतु को मुँह लगाने का अवसर नहीं दिया, सम्भव है इसी कारण वह अमित से चिढ़ने लगा था। शिलांग में रह कर उसने अमित और लावण्य के प्रणय की जानकारी चोरी-चोरी हासिल की। कलकत्ता लौटने पर उसने बड़ी शान से उन सभी मित्रों के सामने अमित के प्रणय की चर्चा की, जो अमित और उसकी बहिनों से अच्छी तरह परिचित थे। उसके द्वारा रखी गई चिनगारी ने भयङ्कर रूप धारण किया।

के. टी. मित्रा का बड़ा भाई नरेन मित्रा सिसी पर मुग्ध है। सिसी मन ही मन नरेन की हो जाने को तैयार है, पर नारी सुलभ लजा के कारण वह इस

विषय में मुँह खोलना उचित नहीं समझती । नरेन मित्रा को अमित पर विश्वास है । वह जानता है कि उसके आते ही उसकी यह परेशानी दूर हो जायगी; वह सिसी को पत्नी के रूप में पा सकेगा । इसी कारण उसने अमित को शिलांग के पते पर पत्र भी लिखे । अमित को अपनी ही पुण्यगाथा से फुरसत नहीं थी । उसने उत्तर तो दिये, किन्तु उनसे नरेन का तात्पर्य सिद्ध न हो सका । इन्हीं दिनों धूमकेतु ने कलकत्ता पहुँच कर अमित-लावण्य की पुण्य-कथा अति रंजित करके लोगों को सुनाई । ऐसी दशा में नरेन ने यही फैसला किया कि स्वयम् ही चलकर अमित को कलकत्ता लाया जाये । इस यात्रा के पीछे नरेन की बहन केटी का प्रमुख हाथ रहा । उसका अमित पर निजी अधिकार था और वह सहज ही उसे त्यागने को तैयार न थी ।

नरेन मित्रा ने एक लम्बे अरसे तक विदेश में रह कर विद्या प्राप्त की है । उसके शरीर, पहनावे, उढ़ावे, बात-चीत, तौर-तरीकों में अच्छी तरह विदेशीपन भर चुका है । पिता के संचित यथेष्ट धन के कारण भविष्य में अर्थ प्राप्त करने की समस्या उसे किंचित भी नहीं सुहाती । उसे चित्रकला से विशेष रुचि है और विदेशों में रह कर उसने कलाकार बनने का प्रयास भी किया था । अपने आत्मीय-स्वजनों के अनुरोध पर उसे अपना यह शौक छोड़ना ही पड़ा । देश लौट आया, किन्तु स्वदेश लौटने पर भी वह अपने को बदल न सका । फ्रांस से कपड़े सिलवा कर मँगाता, वहीं से उसके कपड़े धुलकर आते । जीवन में काम आने वाली अनेकों उपयोग की वस्तुयें वह विदेशों से मँगाकर अपने विदेश प्रेम का अटूट परिचय देता । जिस समाज का वह प्राणी है, वहाँ उसके विदेश प्रेम के कारण ही उसका अपना विशेष महत्व है । लोग उसका सम्मान करते हैं और उसे आदर्श मानते हैं ।

केतकी, नरेन की बहन का देशी नाम है । भाई को यह नाम पसन्द नहीं । विदेशी पुट लाने की इच्छा से ही नरेन ने उसे केतकी के स्थान पर केटी कहना प्रारम्भ किया । धीरे-धीरे लोग केतकी को भूल गये । केटी ने जन्म पाया और वह समाज में प्रसिद्ध हो गई । केटी ने भी विदेश देखा है । अपने विदेशी नाम के कारण उसे विदेशी परम्परा और जीवन के प्रति गहरा मोह भी हो गया है । अपने भाई नरेन के सहयोग से वह शीघ्र ही विदेशी

सभ्यता के रंग में रंग गई। जिस प्रकार सांप केंचुली उतार कर नवीन रूप धारण कर लेता है, ठीक उसी प्रकार केटी ने देशी सभ्यता के बेढंगे आवरण को उतार फेंका। उसने खुली छाती के वस्त्रों को अपनाया और बांहों को ढक कर रखने में असभ्यता का अनुभव किया। आंखों में नवीन प्रकार के भाव लेने की चेष्टा की ताकि विदेशी सभ्यता के अनुसार वह मस्ती में अधमिची सी प्रतीत हों। जिन होठों पर पहले मुस्कराहट खेलती थी वह अब टेढ़े रहकर भाव प्रगट करने के आदी हो चले थे। उसने सभा सोसायटियों की मर्य्यादा की रक्षा करने के लिये सिगरेट पीना भी प्रारम्भ कर दिया। ऊँची एड़ी के जूते पहन कर खट्खट् करके चलने की आदत डाली ताकि उसकी पदचाप भी अपनी विशेष 'रिघ' के कारण ख्याति पा सके।

अमित की बहिन सिसी भी उसी समाज की सदस्या है जिसके नरेन और केटी हैं। लेकिन सिसी अभी केटी के समान अपने आप को बदलने में सफल नहीं हो सकी है। उसके मुस्कराते हुये चहरे और प्रसन्नतापूर्वक हँसी के ठहाकों का अपना निजी महत्व है। सम्भव है इसी विशेष गुण के कारण उसके समाज का युवक समुदाय उसके प्रति सदैव आकर्षित रहता है। उसने अपने जीवन में देशी तथा विदेशी, दोनों भांति के जीवन का निराला सामंजस्य प्रस्तुत किया है। ऊँची एड़ी के जूते पहन कर भी वह सिर पर जूड़ा बाँधती है। साड़ी की लम्बाई यद्यपि छोटी हो चली है किन्तु वह उसे इस तरह पहनती है ताकि उसके अंगों का खुला प्रदर्शन न हो सके। यद्यपि हाथ में दस्ताने पहनने में वह लज्जा अनुभव नहीं करती परन्तु उसने अपने हाथों की चूड़ियों को नहीं उतारा है। सिगरेट पीने में उसे अब कोई आपत्ति नहीं परन्तु पान खाने में उसे अधिक स्वाद आता है। विदेशी भोजन का उसे अभ्यास है; वह उसे खाने में कभी आपत्ति नहीं करती किन्तु वह देशी पकवानों से नफरत भी नहीं करती। उसी रुचि के साथ वह उन्हें भी खाती है। यद्यपि उसने विदेशी ढंग से नाचना भी सीख लिया है किन्तु फिर भी जोड़ी के साथ मिलकर नाचने में उसे संकोच ही होता है। कहने का तात्पर्य है सिसी विदेशी सभ्यता को स्वीकार करने के बाद भी देशी तौर तरीकों पर आस्था रखती है। उसका हृदय देशी जीवन के प्रति अधिक आकृष्ट है।

अमित की प्रेम-चर्चा सुनकर उनका मन उद्विग्न हो उठा। उनके समाज में गवरनेस के साथ प्रेम असह्य था। उन्होंने मन ही मन समझा कि धन और यश के लालच से ही लावण्य ने अवश्य अमित को अपने प्रेम जाल में फंसा लिया होगा। इस बात को कार्य रूप में परिणित करने के लिये केटी और सिसी ने मंत्रणा करके यही तय किया कि पहले अमित को इस विषय में बिलकुल ही न टोका जाये। फिर मौका निकाल कर उसकी प्रेमिका से मिलना चाहिये ताकि सहज ही ज्ञात हो सके कि उसके जाल से किस युक्ति द्वारा अमित को निकाला जा सकता है।

दोनों ने शिलांग आकर स्पष्ट रूप से यह देख लिया कि अमित अब पहले जैसा नहीं रहा है। अपने रहन सहन, वेशभूषा से उसे कोई नहीं कह सकता कि वह विदेशों में शिक्षा प्राप्त करने के लिये सात वर्ष तक रह चुका है। यद्यपि शिलांग आने के पहले भी अमित उनके समाज का सदस्य कभी नहीं था, किन्तु फिर भी उसके रहन सहन, पहनावे उढ़ावे में चमक थी। वह सभ्य संसार का मजा हुआ प्राणी प्रतीत होता था। शिलांग आते ही वह संसार का साधारण प्राणी हो गया। यह बात केटी, सिसी और नरेन को पसन्द नहीं थी। वह अपना विशेष दृष्टिकोण रखते थे और चाहते थे कि उनका अस्तित्व समाज में सदा असाधारण ही रहना चाहिये।

सिसी ने अमित को बातों ही बातों में स्पष्ट कह दिया—"आज शिलांग आकर हमने देखा है कि तुम्हारा रहन सहन ही बदल गया है। यह सब हमारे स्तर से नीचे की बातें हैं। जिन बातों में तुम्हें रस मिलता है वह हमें या हमारे स्तर वाले समाज में ग्राह्य नहीं हो सकतीं। हो सकता है कि तुमने थोड़ा स्वास्थ्य लाभ कर लिया हो परन्तु पहले जैसा मनमौजी-पन खो बैठे हो। तुम अब 'इंटरैस्टिंग' नहीं रहे। समझ में नहीं आता क्यों ?"

अमित बोला—"मेरे जीवन का उथलापन जाता रहा है। प्रकृति के साथ रहने पर मेरे मन को जो छाप लगी है, उसे अंग्रेज कवि वर्ड्सवर्थ ने **'Mute insensate things'** कहा है।"

सिसी और केटी को आशा थी कि एक न एक दिन अमित स्वयम् ही लावण्य के विषय में कहेगा। इसी आशा में तीन दिन बीत गये किन्तु अमित ने

कभी उसका जिक्र तक नहीं किया। प्रात: उनके उठने से पहले ही अमित टह-लने चला जाता था और उनके उठने तक अवश्य लौट आता था। उसके चहरे के भावों को देख कर ज्ञात होता था कि वह इस तरह इतना शीघ्र लौटने के लिये दुःखी रहता था। पहले सदैव वह रवि बाबू की कविताओं का तिरस्कार किया करता था, किन्तु एक दिन केटी और सिसी ने उसके बिस्तर पर रवि बाबू की पुस्तक पड़ी देखी। उनका माथा ठनका। पुस्तक को उठा कर पहला ही पन्ना खोला था कि लावण्य नाम पढ़कर वह रहस्य समझ गयीं। लावण्य नाम का पहला अक्षर लाल स्याही से काटा हुआ था। उसका रहस्य उनकी समझ में नहीं आया।

अमित नित्य ही विभिन्न प्रकार के बहाने करके होटल से निकल जाता था। सिसी उसके बहानों पर हँसती और केटी को जलन होती। मन ही मन वह लावण्य से ईर्षा करने लगी जिसके प्रेम पाश में बंध कर अमित ने केटी की कभी सुधि नहीं ली। एक दिन दोपहर के खाने के बाद अमित बाहर जाने के लिये कपड़े पहनने लगा। सिसी और केटी ने उसके साथ चलने का आग्रह किया। अमित बोला—"इस समय तो मैं अति दुर्गम स्थान की ओर जा रहा हूँ। वहां तक तुम लोगों का पहुँचना असम्भव है। दोनों सखियां शान्त हो गईं। उसके चले जाने के बाद उन्होंने मिल कर यह तय किया कि आज वह भी लावण्य के निवास स्थान पर चल कर असलियत का पता लगायें। उनका विश्वास था कि नारंगियों के मधु लाने का बहाना करके अवश्य ही अमित लावण्य के घर गया होगा।

नरेन घुड़दौड़ जाने की तैयारी करने लगा। उसने सिसी को भी साथ चलने को कहा मगर सिसी न जा सकी। लाचार नरेन को अकेले ही जाना पड़ा।

—०—

१५.

आघात

अपने निश्चय के अनुसार सिसी और केटी योगमाया के घर जा पहुँचीं। दोपहर का समय था। नित्य की भाँति इस समय लावण्य बगीचे में बने चबूतरे पर कुर्सी मेज डाले सुरमा को पढ़ा रही थी। अतः सहज ही उन दोनों ने लावण्य को देख लिया और पहचान लिया।

केटी ने चबूतरे पर चढ़ कर अंग्रेजी में कहा—"मुझे दुःख है।"

लावण्य ने कुर्सी से उठते हुये पूछा—"आप किस को चाहती हैं?"

केटी ने लावण्य के चहरे पर अपनी भेद-भरी निगाह डालते हुये कहा—"मैं यह जानना चाहती हूँ कि मिस्टर अमिट राये यहां आये हैं या नहीं?"

अमितराय का ही विदेशी रूप अमिटराये है, इस भेद को लावण्य नहीं जानती थी अतः उसने सहज स्वभाव से कहा—"उनसे तो शायद हम लोग परिचित नहीं।"

केटी ने सिसी की ओर देखा। आंखों ही आंखों में दोनों की बातें हो गयीं। चहरों पर मुस्कान की एक रेखा दौड़ गई। लावण्य के उत्तर से असन्तुष्ट होकर केटी ने सिर हिलाकर झुंझलाये हुये स्वर में कहा—"हमें मालूम है कि वह अक्सर यहाँ आते रहते हैं।"

उनकी भाव भंगिमा देखकर लावण्य को अपनी भूल ज्ञात हुई। वह मन में संकोच करने लगी अतः बात सम्भालने की गरज से उसने कहा—"मैं मां को बुलाये देती हूँ; उनसे आपको सब बात ज्ञात हो सकेगी।"

लावण्य चली गयी। केटी ने सुरमा से पूछा—"क्या यह तुम्हारी गवरनेस है?"

सुरमा ने कहा—"हां!"

केटी ने पूछा—"इन्ही का नाम लावण्य है।"

सुरमा ने उत्तर दिया—"जी हां।"

केटी ने सिगरेट सुलगाने के लिये माचिस मांगी। सुरमा ने दियासलाई ला कर दे दी। आराम से कुर्सी पर बैठ कर सुरमा ने अपने मुँह में लगा कर एक सिगरेट जलाई और फिर सुरमा से पूछा—"तुम अंग्रेजी पढ़ती हो?"

सुरमा को केटी के तौर तरीके पसन्द नहीं थे। वह उसके प्रश्नों का अधिक उत्तर देना नहीं चाहती थी, अतः सम्मति सूचक सिर हिलाकर वह उस स्थान से भाग गयी। तब केटी ने सिसी की ओर रुख करके कहा—"सिसी, तुमने इस लावण्य को देख लिया जिसने अमिट के दिल को काबू में कर रखा है। अमिट का कोई टेस्ट नहीं ?"

सिसी इस बात पर हँस पड़ी। वह मन ही मन केटी और लावण्य की तुलना करने लगी। सोचने लगी कि ऐसी कौन सी विशेष आकर्षण लावण्य में है जिसके कारण वह अमित के हृदय पर अधिकार करने में सफल हो सकी है। जब उसे ऐसा कोई कारण नजर नहीं आया तो उसने यह केवल अमित की उदारता समझी।

केटी ने सिसी को शान्त देखकर पुनः कहा—"सिसी, तुम्हारे भाई की बुद्धि सबसे निराली है। वह हमेशा अपनी हर बात को विपरीत ढंग से ही सोचते हैं। मालूम नहीं होता कि इस लड़की में उन्हें ऐसी क्या विशेषता नजर आयी है जो उसके लिये अपना सब कुछ लुटाने के लिये तैयार हो गये हैं।"

सिसी को शान्त देखकर अब केटी का धैर्य्य जाता रहा। उसे मन ही मन इच्छा हुई कि वह उठ कर उसकी उदासीनता दूर करने के लिये उसे खूब जोर से पकड़ कर झकझोर डाले। किन्तु उसने ऐसा करना उचित नहीं समझा। अपना ध्यान उस ओर से हटाने के लिये उसने अपने बड़े पर्स में से एक छोटा सा शीशा निकाला और चांदी की बनी हुई छोटी सी पाउडर की डिबिया निकाल कर नाक पर पाउडर लगाया। फिर अंजन की सलाई से अपनी भौंहों को अधिक चमकदार बना कर पर्स बन्द कर दिया।

योगमाया कमरे में से निकल कर चबूतरे की ओर आती दिखाई दीं। केटी का बड़े २ बालों वाला "टैब" कुत्ता अपनी आदत के अनुसार उनको देख-कर भोंकने लगा और उनके पल्ले को पकड़ कर खींचने लगा। लपक कर सिसी ने आगे बढ़ कर कुत्ते को रोका। योगमाया चबूतरे पर आ गयीं।

केटी ने कुर्सी नहीं छोड़ी। वह अपनी तिरछी चितवन से योगमाया को देखने लगी। मन ही मन यह सोचकर कि इनकी ही मदद से अमित और

लावण्य का प्रेम हुआ है, केटी का हृदय घृणा से भर गया। उसके चहरे पर योगमाया के प्रति विद्वेष के भाव स्पष्ट हो उठे।

सिसी ने योगमाया को देखते ही कुर्सी छोड़ दी। उनके सामने गयी और हाथ जोड़ कर नमस्कार करते हुये कहा—"मैं अमित की बहन सिसी हूँ।"

योगमाया मुस्करा कर बोली—"बेटी, वह मुझे मौसी कहता है, अतः मैं तुम्हारी भी उसी नाते मौसी हूँ।"

केटी के मनोभाव योगमाया से छिपे न रह सके। उन्होंने उसकी विशेष चिन्ता भी नहीं की। पुनः वह सिसी से बोलीं—"चलो, बेटी, घर में भीतर चल कर बैठो।"

सिसी ने कहा—"धन्यवाद, मैं तो केवल यह पता लगाने आयी थी कि अमित भैय्या यहाँ आये हैं अथवा नहीं ?"

योगमाया ने कहा—"नहीं बेटी, अभी तक अमित यहां तो नहीं आया है।"

सिसी ने पूछा—"क्या बता सकेंगी कि कब आयेंगे ?"

योगमाया ने कहा—"यह मैं ठीक तरह नहीं बता सकती। अच्छा जरा ठहरो लावण्य से पूछ कर आती हूँ।"

केटी ने बैठे ही बैठे बड़े बेढंगेपन से कहा—"क्या आप उसी मास्टरनी से पूछना चाहती हैं जो अभी कुछ देर पहले बच्ची को पढ़ा रही थी। मुझे तो उसकी जबानी मालूम हुआ है कि वह अमिट को बिलकुल जानती ही नहीं।"

योगमाया सोचने लगी कि अवश्य ही आपस में कहीं गलत फहमी हो गयी है। उसे यह भी स्पष्ट हो गया कि इन लोगों से जान बचाना भी मुश्किल हो जायेगा, अतः बात का रुख बदलते हुये बोली—"आजकल अमित तुम लोगों के साथ होटल ही में तो रहता है अतः उसके विषय में तुम लोगों को अधिक जानकारी होनी चाहिये।"

केटी अजीब तरह से मुस्करा कर शान्त हो गयी। उसने एक भेद भरी निगाह से सिसी के चेहरे की ओर ताका। शीघ्र ही वह समझ गयी कि सिसी पर योगमाया का प्रभाव पड़ चुका है। केटी जानती थी कि सिसी का हृदय कमजोर है। वह अपने हृदय से संकोच का भाव निकालने में असफल रही है।

उसे यह भी ज्ञात था कि सिसी केटी की किसी बात का विरोध करने में समर्थ भी नहीं है अतः उसने उसे भी अपने ही रंग में प्रस्तुत करने की इच्छा से इस अवसर का लाभ उठाना चाहा। एक सिगरेट निकाल कर सिसी के मुँह में लगायी और उससे सुलगाने के लिये अपने मुँह को बढ़ा दिया जिसमें उसकी जली हुई सिगरेट होठों में दबी हुयी थी। सिसी योगमाया के सामने इस तरह का व्यवहार करने को तैयार न थी परन्तु केटी के आग्रह को इन्कार करने की शक्ति उसमें शेष न थी। उसने केटी का आग्रह स्वीकार किया।

ठीक इसी समय अमित आ पहुँचा। सिसी और केटी ने देखा उसने होटल से चलते समय जो कपड़े पहने थे वह इस समय उसके शरीर पर न थे। वह साधारण देशी कपड़े पहने हुये था। इस प्रकार के कपड़ों में देख कर वह दोनों विस्मित रह गयीं। असल बात यह थी कि होटल से दोपहर का भोजन कर लेने के बाद अमित अपने पुराने घर में आकर विश्राम करता था। यद्यपि उसका कुछ सामान होटल में था किन्तु फिर भी उसने अपनी कुटिया में कुछ पुस्तकें, एक कपड़ों का बक्स रख छोड़ा था। लावण्य ने उसे हर समय आकर मिलने से मना कर दिया था वह दिन में सुरमा को पढ़ाती थी और अमित के आ जाने के कारण उसके काम में कठिनाई होती थी। अतः शाम को चार बजे चाय के समय दोनों की मुलाकात होती थी। इसी समय अमित योगमाया के घर आता था।

आज ही कलकत्ते से मँगायी हुई मोती की अगूँठी आयी थी। अमित उस अगूँठी को लावण्य की उँगली में पहनाने के लिये अधिक व्यग्र था। इसी कारण आज वह अपने निश्चित समय से एक घण्टा पहले ही आ पहुँचा था। वहाँ आकर उसने सिसी और केटी को मुँह में सिगरेट लगाये देखा। योगमाया को स्तब्ध खड़े देखकर वह समझ गया कि अवश्य ही मौसी इन छोकरियों की उच्छृङ्खल प्रकृति पर दुखी हैं। मामले को साधने की इच्छा से उसने केटी और सिसी की उपेक्षा करते हुये योगमाया के चरणों का स्पर्श करते हुये पूछा—"मौसी, लावण्य कहां है?"

योगमाया ने अमन्यस्क भाव से कहा—"बेटा, अन्दर ही किसी कमरे में बैठी होगी।"

अमित ने आश्चर्य से कहा—"लेकिन मौसी अभी तो सुरमा को पढ़ाने का समय समाप्त नहीं हुआ ?"

योगमाया ने कहा—"शायद आगन्तुकों के आ जाने के कारण ही आज उसने जल्दी छुट्टी कर दी है।"

अमित ने योगमाया से कहा—"चलो मौसी, उसके पास चल कर ही देखें कि वह क्या कर रही है ?"

योगमाया अमित के साथ घर के अन्दर चली गयी। अमित ने सिसी और केटी की ओर निगाह उठाकर देखा भी नहीं और न उनसे कुछ बात ही करना उचित समझा। उपेक्षा के कारण दोनों मन ही मन अमित पर क्रोध करने लगीं।

सिसी ने कहा—"केटी, हमारा अपमान हुआ है। अब यहां ठहरने की मैं कोई आवश्यकता नहीं समझती।"

केटी को भी बहुत क्रोध था फिर भी वह अभी वापिस लौटने को तैयार नहीं थी। उसने सिसी की बात सुनकर कहा—"सिसी, आज मैं इस मनोव्यथा का सदा के लिये ही फैसला करके घर जाऊँगी।"

थोड़ी देर बाद सिसी ने फिर केटी से लौट चलने का आग्रह किया किन्तु केटी बोली—"कभी तो वह लोग घर में से बाहर निकलेंगे। आज फैसला होकर ही रहेगा।"

अन्त में अमित लावण्य को साथ लिये बाहर आया। इस समय लावण्य बिलकुल शान्त थी। यद्यपि योगमाया उन दोनों के सामने बाहर आने को तैयार नहीं थीं किन्तु अमित नहीं माना। जबरदस्ती उन्हें भी पकड़ लाया। केटी ने देखा लावण्य के हाथ में एक अगूंठी थी जिसको देखते ही उसके मस्तिष्क में विकार उत्पन्न हुआ। उसका खून खौल उठा।

अमित ने कहा—"मौसी, यह मेरी बहन शमिता है। और दूसरी मेरी बहन की सखी केतकी है।"

इधर कहीं सुरमा की पालतू बिल्ली बाहर निकल आयी थी। केटी के कुत्ते टैब ने उसे दबोचना चाहा। कुछ देर तक कुत्ते बिल्ली की चीख पुकार होती रही। अन्त में बिल्ली कुत्ते की पकड़ से भाग कर सुरक्षित स्थान में पहुंच गयी

तब शान्त हो जाने के बाद अमित ने सिसी को लक्ष्य करके कहा—"सिसी, यही लावण्य है। यद्यपि मैंने तुम्हें इनके विषय में कभी नहीं बताया, किन्तु फिर भी औरों के मुख से तुम इनका नाम जान चुकी हो। अगहन मास में हम दोनों का विवाह कलकत्ते में ही होगा।"

केटी ने अपने चेहरे पर मुस्कराहट लाने की निष्फल चेष्टा करते हुये कहा—"मैं इसके लिये तुम्हें बधाई देती हूँ। मैं समझती हूँ कि तुरंगी का मधु तलाश करने में अधिक कष्ट नहीं हुआ। मधु स्वयम् तुम्हारे पास आ गया है।"

सिसी को उचित उत्तर न सूझ पड़ा। वह ही, ही, करके हँस पड़ी। यह उसकी सदा की आदत थी। लावण्य ने केटी के शब्दों में व्यंग का अनुभव तो किया, किन्तु रहस्य समझने में असफल ही रही।

अमित नहीं चाहता था कि लावण्य के हृदय में किसी भी प्रकार का सन्देह बना रहे। इस कारण उसने कहा—"आज दोपहर को जब मैं होटल से चलने लगा था तो इन दोनों ने मुझसे पूछा था, कहाँ जा रहे हो? मैंने सहज स्वभाव में कह दिया, नारंगी का मधु देने। उसी बात को लेकर केटी ने इस समय व्यंग किया है।"

लावण्य की जिज्ञासा शान्त हो गई।

केटी ने गम्भीरता से कहा—"नारंगी का मधु तुम्हें प्राप्त हो गया। इसमें तुम्हारी विजय है। अब ऐसा करो ताकि मैं पराजय से बच सकूँ।"

अमित ने कहा—"तुम्हें पराजय से बचाने के लिये मुझे क्या करना है, कहो।"

केटी ने कहा—"नरेन से मैंने आज शर्त बदी थी कि मैं तुम्हें घुड़दौड़ के मैदान में अवश्य ले जाऊँगी। उसका विश्वास था कि तुम्हें वहाँ तक ले जाने की हिम्मत किसी में नहीं है। अन्त में अपनी बात रखने के लिये मैंने जिद की और अपनी हीरे की अँगूठी दाव पर लगा दी है। तुम मेरे साथ वहाँ तक चलने का कष्ट करो तो मेरी अँगूठी बच सकती है। तुम्हें ढूँढने के लिये अनेकों झरने और मधु की दुकानें खोजनी पड़ीं, तब कहीं यहाँ आकर तुम से मुलाकात हो सकी है।"

सिसी फिर ठहाके मार कर हँसने लगी।

केटी ने पुनः कहा—"अमित, तुम्हीं ने एक दिन किसी दार्शनिक की कहानी सुनाते समय कहा था कि जब उसकी चोरी हो गई और चोर का पता न लगा, तो वह कब्रिस्तान में जाकर बैठ गया। उसका कहना था आखिर वहाँ से चोर भाग कर कहाँ जायेगा। हमारे पूछने पर तुम्हारी मिस लावण्य ने तुम्हारे परिचय से भी इन्कार कर दिया था, किन्तु हम भी धरना देकर बैठे ही रहे। सोचा यहाँ नहीं आओगे तो कहाँ जाओगे। तुम्हें यहाँ तो आना ही पड़ेगा।"

सिसी अपनी आदत के अनुसार फिर ठहाके मार-मार कर हँसने लगी।

तब केटी ने लावण्य को लक्ष्य करके कहा—"आपका नाम अमित बाबू अपनी जबान पर न ला सके, किन्तु नारंगी का मधु कह कर उन्होंने आपके प्रति अपने उद्‌गार व्यक्त कर ही डाले। आप उनसे भी अधिक सरल हैं। आपने तो उन्हें जानने तक से इन्कार कर दिया। खैर कोई बात नहीं, जिसका जिस पर स्नेह होता है, वह उसे पा जाता है; ऐसा ही संसार का विधान है। मैं समझती हूँ आज की हार मेरे ही भाग्य में है। सिसी, तू ही बता मेरे साथ अन्याय हो रहा है या नहीं ?"

सिसी जब किसी बात का उत्तर देने में असमर्थ होती है, तो वह जोर-जोर से ठहाके लगा कर हँसने लगती है। इस बार भी उसने ऐसा ही किया।

केटी ने सिसी का आशय समझ लिया। उसने तब अमित को लक्ष्य करके कहा—"अमित, तुम जानते हो कि यह हीरे की अँगूठी जिस दिन से तुमने मेरी उँगली में पहनाई है, तभी से मैंने इसे कभी अपने शरीर से अलग नहीं किया है। इसी के सहारे मैं अब तक अपने मन को शान्त रखे हुये थी। क्या तुम यह चाहते हो कि शिलांग पहाड़ पर एक छोटी सी बात की शर्त के लिये मैं इसे सदा के लिये गँवा दूँ।"

सिसी ने कहा—"अगर ऐसा ही था, तो फिर शर्त ही क्यों बदी थी ? पहले ही सोचा होता ?"

केटी ने कहा—"बहन, उस समय मुझे अपने पर गर्व था और पहनाने वाले पर विश्वास था। आज मेरा वह गर्व टूट गया है। मालूम होता है जिस

पर मुझे गर्व था, वह अब मेरा नहीं है। मैं स्वयम् अपनी पराजय स्वीकार करती हूँ। मुझे यह कभी आशा नहीं थी कि इतने प्रेम से मेरे हाथ में इस अँगूठी को पहनाने वाला अमित, मेरी यह छोटी सी बात भी टाल देगा। पहनाते समय क्या अमित ने वचन नहीं दिया था कि वह मेरा अपमान कभी नहीं होने देगा। खैर, अब मुझे उन बातों पर कोई विश्वास नहीं।"

इतना कहते-कहते केटी का गला भर आया। उसकी आँखों से आँसुओं की झड़ी बहने लगी। लाख चेष्टा करने पर भी वह अपने आँसुओं को रोकने में असमर्थ ही रही।

अमित की आँखों के सामने सात वर्ष पहले की बात नाचने लगी। इंग्लैंड में एक बार नौका दौड़ में अमित जीत गया था। केटी भी उस समय इंग्लैंड ही में थी। उसकी उम्र अट्ठारह वर्ष की रही होगी। एक पंजाबी युवक केटी की ओर विशेष आकर्षित था। जीत के बाद केटी जब उसे बधाई देने गई, तो अमित से उसकी आँखें चार हुईं। यौवन के प्रथम सोपान पर ही दोनों के हृदय में प्रेमांकुर फूट निकला। अमित ने उसी समय अपने हाथ की हीरे की अँगूठी उतार कर केटी की उंगली में पहना दी। कवितामय शब्दों में उसने केटी के कानों में अपना प्रेम सन्देशा देते हुये कहा—

" Tender is the night
And happy the queen moon is on her
throne."

केटी उस समय अधिक बात करना नहीं जानती थी। केवल उसने फ्रेंच भाषा में अपना प्रेम दर्शाते हुये कहा—"मान आमी" अर्थात्–प्रियतम !

उस दिन की याद आते ही अमित सोच में पड़ गया। उसे उत्तर देते न बना। वह शान्त खड़ा रहा।

केटी ने रुंधे हुये गले से कहा—"आज जब शर्त में हार हो गई अमित, तो तुम इसे अपने पास ही रहने दो। हार के इस चिह्न को लेकर मैं क्या करूँगी।"

इतना कहते-कहते उसका धैर्य्य जाता रहा। उसने अपनी उंगली से

हीरे की अंगूठी उतारी और मेज पर रख कर तेजी से चली गई। उसकी आँखों से आँसू बड़ी तेजी से निकल रहे थे, जो उसके चेहरे पर लगे हुये पाउडर को धोने लगे।

१६.

मुक्ति

लावण्य को शोभनलाल का एक छोटा सा पत्र मिला। उसमें लिखा था—"कल रात को शिलांग पहुँच रहा हूँ। मैं तुमसे मिलना चाहता हूँ और अगर तुम्हारी अनुमति होगी तो मिलकर अपने अपराध को जानना चाहूँगा। दण्ड उठाते-उठाते मैं दुःखी हो गया हूँ, किन्तु फिर भी मैं अपने अपराध को आज तक नहीं जान पाया हूँ। तुम्हारी बड़ी कृपा होगी, जो मुझे मेरे अपराध से अवगत करा दो, ताकि मेरे मन को शांति मिल सके और मैं दण्ड भार पूर्णतया उठाने में समर्थ हो सकूँ। मैं सत्य कहता हूँ, केवल इस प्रार्थना के, मेरी और कोई प्रार्थना नहीं है। तुम भय मत करना।"

लावण्य ने शोभनलाल के पत्र को पढ़ा। कई बार पढ़ा। उसे उसकी व्यथा जान कर दुःख हुआ। उसकी आँखें छलछला आईं। शान्त होकर उसने उसी समय पत्र का उत्तर लिख दिया—

"तुम अब तक मुझे उतने ही प्रिय हो, जितने उस समय थे। आज तक तुमने मुझसे कुछ नहीं चाहा है और चाहने पर भी मैं तुम्हें कुछ दे भी न सकी हूँ। आज तुमने मुझ से, जो माँगा है, वह तुम्हारा अपना हक है। उसे इन्कार करने की क्षमता मुझ में नहीं है। प्रसन्नता से मैं तुम्हारा स्वागत करूँगी।"

लावण्य ने पत्र का उत्तर तो भेज दिया। उसने तब अपने अतीत पर दृष्टि डाली। उसकी आँखों के सामने शोभनलाल की करुणामयी मूर्ति नाचने लगी। उसके हृदय की भीरुता पर उसे तरस आने लगा। वह सोचने लगी कि यदि शोभनलाल ने उस समय हिम्मत से काम लिया होता तो आज वह दोनों

आनन्द से जीवन पथ पर अग्रसर हो रहे होते । उसे अपने ऊपर भी क्रोध आया कि उसने भी गर्व किया । शोभनलाल के प्रेम को गर्व के मद में ठुकरा दिया । परिणाम स्वरूप दोनों ही विकल रहे, व्यथित रहे । आज अहंकार टूट गया । उसे शोभनलाल के प्रति प्रेम की रेखायें अपने हृदय पटल प स्पष्ट दीखने लगीं । वह शोभनलाल की व्यथा भरी चिट्ठी से उसके नीरस जीवन का अन्दाजा लगा सकी । पश्चाताप करने लगी, अतीत को सोचकर । अपनी भूल पर भी और शोभनलाल की भूल पर भी ।

इतने में अमित आ पहुँचा । लावण्य को चिन्तित बैठा देख उसने कहा—"बन्या, चलो थोड़ी देर घूम आयें ।"

लावण्य ने उठते हुये कहा—"चलो, चलें ।"

अमित लावण्य को साथ लेकर चल दिया । मार्ग में चलते हुये अमित ने उसका हाथ अपने हाथ में ले लिया और अपने मन के भावों को स्पष्ट करने की इच्छा से मसक भी दिया । दोनों शान्त ही रहे, बोले कुछ नहीं । धीरे-धीरे घूमते हुये वह दोनों पहाड़ के उस स्थान पर जा पहुँचे जहाँ से क्षितिज के उस पार सूर्य अस्त होने की चेष्टा करता, स्पष्ट दीख पड़ता था । उस स्थान पर वह आमने-सामने मुँह करके खड़े हो गये ।

लावण्य ने मधुर स्वर में पूछा—"मीता, तुमने मेरी खातिर एक को पहनाई हुई अँगूठी क्यों उतरवाली ।"

अमित ने कहा—"बन्या, जिसको जिस समय अँगूठी पहनाई थी और आज जिसने उतारी है, यद्यपि वह एक ही प्राणी है किन्तु समय के फेर ने उन्हें दोनों अवसरों पर विभिन्न रूप प्रदान किये हैं । यह बात शायद तुम नहीं समझ सकोगी ।"

लावण्य ने कहा—"जिस समय तुमने अँगूठी पहनाई थी, उस समय वह भगवान के लाड़-प्यार से बनी हुई नारी थी और आज जो तुमने उसका रूप देखा है, वह तुम्हारे अनादर के कारण ही हुआ है ।"

अमित ने कहा—"नहीं बन्या, तुम्हारी यह बात सत्य नहीं । केटी का आज जो रूप है, उसका कारण मैं नहीं हूँ । हो सकता है कि उसमें थोड़ा-बहुत हाथ मेरा भी रहा हो ।"

लावण्य ने कहा—"नहीं मीता, मैं इस विषय में तुम्हारी यह बात मानने को तैयार नहीं। अपराध तुम्हारा है। तुम्हीं बताओ जिसने अपना सम्पूर्ण तुम्हें अर्पित कर दिया था, फिर तुमने उसे अपना बना कर क्यों नहीं रखा। अगर तुमने ही उसे ढील न दी होती तो वह तुम्हारी इच्छा के विपरीत कभी न जा सकती थी। खैर, इन सब बातों को रहने दो। मेरी एक प्रार्थना है, स्वीकार करनी ही पड़ेगी।"

अमित ने कहा—"तुम्हारी बात अवश्य मानूँगा।"

लावण्य ने कहा—"मीता, मैं चाहती हूँ कि तुम अपनी बहन तथा मित्रों को साथ लेकर एक सप्ताह के लिये चेरापूंजी घूम आओ। यह मैं मानती हूँ कि तुम उसे आनन्द न दे सकोगे, किन्तु उसका हृदय तो शान्त हो जायेगा।"

कुछ देर सोचकर अमित ने कहा—"बन्या, मैं तुम्हारी बात नहीं टालूँगा।"

उसके बाद लावण्य ने अति स्नेह का भाव प्रदर्शित करते हुये अमित के सीने पर अपना सिर टिका दिया और कहा—"मीता, मेरी एक प्रार्थना और है, इसके बाद फिर कभी मैं तुमसे कुछ नहीं कहूँगी। मेरे साथ तुमने प्रेम करके मुझे आभारी किया है, यह बात मैं जन्म जन्मान्तर तक नहीं भूल सकती। मैं अपने सम्पूर्ण प्यार को सामने रख कर आज तुमसे प्रार्थना करने को बाध्य हो गई हूँ। तुम्हारा प्रेम मेरी नस-नस में समा गया है। मैं नहीं चाहती कि मेरे हृदय की बात, संसार केवल तुम्हारी अँगूठी के कारण जान सके। तुम्हारे प्रेम को मैं संसार की निगाहों से बचाकर अपने दिल में रखना चाहती हूँ, भगवान के लिये ऐसा ही करो। अपने प्रेम की निशानी, अँगूठी को वापिस ले लो।"

इतना कह कर लावण्य ने अमित की अँगूठी उतार कर उसकी ओर बढ़ा दी और फिर धीरे से उसकी उंगली में पहनाने लगी। अमित शान्त रहा। उसने कोई बाधा नहीं दी।

सन्ध्या की धूमिल रश्मियों में दोनों के मुख एक दूसरे की ओर बढ़े।

१७.

अन्त

लावण्य की इच्छानुसार अमित अपने दल को लेकर उसी दिन चेरापूंजी की ओर चला गया। सात दिन तक घूमने-फिरने के बाद वह लोग लौटे। शिलांग पहुँचते ही अमित सबसे पहले योगमाया के घर गया, वहाँ कोई न था। मकान में ताला बन्द था। योगमाया अपने परिवार के साथ शिलांग से विदा हो चुकी थी।

अमित के हृदय पर आघात लगा। वह सकते की सी दशा में अपने चिर परिचित यूकिलिप्टस के पेड़ के नीचे खड़ा होकर शून्य की ओर ताकने लगा। माली ने जैसे ही अमित बाबू को आया हुआ देखा, वह लपक कर उनके पास आया। जुहार करके बोला—"बाबू साहब, मकान का ताला खोल दूँ। भीतर बैठिये।"

अमित ने ताला खोलने का आदेश दिया। आदेश पाकर माली ने ताला खोल दिया। अमित तीर की तरह धड़धड़ाता हुआ लावण्य के कमरे में जा पहुँचा।

कमरे की दशा ही बदल चुकी थी। फर्नीचर तो सब ज्यों का त्यों लगा हुआ था, किन्तु वहाँ सामान शेष न था। केवल रद्दी लिफाफे, टूटे निब और एक छोटी सी पेन्सिल के अलावा वहाँ अमित को कुछ नहीं मिला। उसने छोटी सी पेन्सिल को उठाकर जेब में रख लिया। भारी हृदय से वह लावण्य के पलंग पर जा पड़ा। माथे पर हाथ रखे कुछ देर तक सोचता रहा। शून्य की ओर दृष्टि किये शान्त वातावरण में उसने क्या सोचा, वह स्वयम् उसे भी ज्ञात नहीं था। जब मूर्च्छा टूटी तब पुनः पलंग से उठ खड़ा हुआ। हृदय पर भार का बोझ लादे हुये वह अपनी कुटिया की ओर गया।

कुटिया का सारा सामान ज्यों का त्यों ठिकाने पर रखा था। उसने देखा कि जाते समय योगमाया अपनी आराम कुर्सी तक नहीं ले गई। शायद उसे ही दे गई है। योगमाया का विचार आते ही इसका मन श्रद्धा से भर गया।

आराम कुर्सी के सामने बैठकर उसने बड़ी श्रद्धा से दोनों हाथ जोड़े और योग-माया की निशानी समझ, पूर्ण श्रद्धा से प्रणाम किया।

अमित का हृदय खिन्न हो गया। जिस शिलांग को छोड़ने में उसका हृदय फटता था, आज उन सबके चले जाने के कारण बस उसे काटने को दौड़ता प्रतीत हुआ। उसे वहाँ रहना सह्य न हुआ। उसी दिन अमित ने भी शिलांग छोड़ दिया।

—o—

१८.
अन्तिम गीत

यतीशंकर कालिज में पढ़ता है और प्रेसीडेन्सी कालिज के कोल्हूटोला वाले मैस में रहता है। अमित अक्सर उसे अपने साथ ले जाता है। खूब घुमाता फिराता भी है, मगर कभी-कभी वह ऐसी बातें कह देता है, जिसे सुनकर यतीशंकर चौंक जाता है।

यकायक अमित गायब हो गया। वह यतीशंकर को न मिला। यतीशंकर ने कभी तो सुना कि वह नैनीताल है, कभी सुना वह उटाकमण्ड है। एक दिन उसे अमित के एक मित्र के द्वारा ज्ञात हुआ कि वह इन दिनों केटी के विदेशी-जीवन प्रणाली को छुड़ाने की चेष्टा कर रहा है। अमित की बहन सिसी के द्वारा ही यतीशंकर को यह ज्ञात हुआ कि उसने केटी को पूर्णतया बदल दिया है। केटी अब अपने को केतकी कहलाना चाहती है। उसके जीवन पर जो पाश्चात्यता का कलेवर चढ़ा हुआ था, उसे अमित ने दूर कर दिया है।

एक दिन अमित वापिस लौट आया। तमाम शहर में यह बात मशहूर हो गयी कि वह केतकी के साथ विवाह करने वाला है। मगर यतीशंकर से अमित ने कभी कुछ इस विषय में नहीं कहा। पहली की तरह अब अमित यतीशंकर से व्यवहार नहीं करता। उसके व्यवहार में बेरुखी नहीं है किन्तु गम्भीरता आगयी है। वह अधिक तर्क-वितर्क नहीं करना चाहता। ऐसा ज्ञात होता है कि वह अपनी केतकी के साथ ही मग्न रहना चाहता है।

किन्तु यतीशंकर केतकी के साथ विवाह की बात को निश्चित रूप से जानना चाहता था अतः स्वयम् ही अमित से पूछ बैठा। बोला—"सुना है भाई साहब आप मिस केतकी मिश्रा से ब्याह कर रहे हैं ?"

अमित ने थोड़ी देर शान्त रहकर स्वयम् पूछा—"क्या लावण्य को इसके विषय में ज्ञात हो गया है ?"

यती ने कहा—"नहीं ! अभी तो मैंने उन्हें नहीं लिखा है। चाहता हूँ कि जब तक आपके द्वारा इस विषय में सत्यता ज्ञात न हो जाये जब तक लिखना ही बेकार है।"

अमित बोला—"बात तो सच है। किन्तु लावण्य इसे सत्य न समझे !"

यतीशंकर हँस कर बोला—"इसमें सच समझने या न समझने की गुंजायश ही कहां है ? ब्याह होगा तो होगा ही। आशंका की बात ही कहां है ?"

अमित ने कहा—"विवाह के हजारों मतलब हैं ? सीधे साधे तौर पर स्त्री पुरुष के मेल को ही विवाह कहते हैं।"

इसके बाद विवाह और प्रेम के ऊपर अमित काफी देर तक यती को उपदेश देता रहा। उसने बातों ही बातों में इस बात को पूर्णतया प्रगट कर दिया कि वह लावण्य को हृदय से प्रेम करता है किन्तु समाज के कारण वह केतकी से विवाह से डर रहा है।

यतीशंकर जिज्ञासा वश पूछा—"भाई साहब ! अगर श्रीमती केतकी को ज्ञात हो जाये कि आपका प्रेम लावण्य से है तो शायद ठीक न होगा ?"

अमित बोला—"यती ! वे इस विषय में अनिभिज्ञ नहीं हैं। वे इस बात को अच्छी तरह जानती हैं कि जीवन भर मैं उनको विवाहिता पत्नी के रूप में समस्त प्रकार के सुख उपलब्ध कर सकूंगा। उन्हें जो कुछ भी चाहिये सब दूंगा। मैं उनके प्रति सदैव ईमानदारी से व्यवहार करूँगा। उन्हें तो इस सब के लिये लावण्य का अहसान ही मानना चाहिये।"

"तो क्या अब मैं श्रीमती लावण्य को आपके विवाह की सूचना दे दूं ?" यतीशंकर ने प्रश्न किया।

"जरूर दे दो ! मगर उसके पहले तुम उनके पास मेरा एक पत्र भेज देना ।" अमित ने कहा ।

"अवश्य" यतीशंकर बोला ।

× × ×

अमित ने लावण्य को पत्र में लिखा—

उस दिन सन्ध्या के समय यात्रा के अन्त होने पर मैंने उसे कविता के द्वारा ही समाप्त कर दिया था । आज भी यहां आकर रुक गया हूँ और इस अवसर पर भी एक कविता को छोड़ देना चाहता हूँ ताकि वह इस समाप्ति के अवसर की स्मृति बनी रहे । बेचारा निवारण चक्रवर्ती जिस दिन पहचाना गया था उसी दिन वह एक क्षीणकाय लाचर मछली की भांति मर चुका है । अतः और कोई उपाय न देखकर इस अवसर पर तुम्हें अपनी अन्तिम बात का सन्देस पहुँचाने के लिये तुम्हारे ही कवि का सहारा लेने को बाध्य होगया हूँ—

किसी समय देखा तेरा
तेरे ही हृदय-पट पर
वह रूप तिहरा मैंने
जिसको है मैंने सदा निहारा,
हृदय के अज्ञान क्षेत्र में
लो हुआ आज
तेरा आना जो मैंने अन्तिम जाना ।
मिल गयी मुझे स्पर्श मणि
कर गयी तू ही साध पूर्ण
सूना-पन मेरा मैंने जाना ।
जब हुये हताश प्राण
छाया जीवन में अन्धियारा
आकर तुमने मेरे मनको
निज प्रीत-चाह को दे डाला ।
हाथों में लेकर आई
तुम सन्ध्या का देव-दीप

मेरे मन मन्दिर को
कर गयीं ज्योति दान
प्यार हुआ दीप्तमान।
विरहा नल से जलते
मूर्ति और प्रेम-पुजारी
दीखे हैं उस ज्योति में
दुःख के उस स्रोत्र में।
—भीता

इस पत्र को भेजने के बाद कुछ समय बीत गया। एक दिन जब केतकी अपनी बहन की पुत्री के अन्नप्राशन में अकेली ही गयी हुई थी और अमित घर पर ही बैठा आराम से सामने पड़ी चौकी पर पैर फैलाये बैठे हुये 'विलियम जेम्स की पत्रावली' पढ़ रहा था, पीतशंकर आया। उसने लावण्य का एक पत्र उसे दिया। उस पत्र की दूसरी ओर लावण्य और शोभनलाल के विवाह का सन्देश था। लिखा था छः महीने बाद विवाह जेठ मास में रामगढ़ पर्वत के शिखर पर होगा। उसके दूसरी ओर लावण्य की कविता थीः—

सुना तुमने
दौड़ता है घनघनाता
काल चक्र
इस अनन्त आकाश में,
काजल-तम
रो रहा है धाड़ मार
कम्पायमान
होता है नक्षत्र-प्रकाश में।
ओ तात, मेरे सखा,
भागते उस काल ने
बन्दी किया मुझे, और
फँसा दिया है जाल में,
शीघ्र ही उठाकर मुझे
पटका द्रुतगामी पान में,

कर दिया तुमसे दूर।
हृदय हुआ चूर-चूर।
भास हुआ मुझे ऐसा
पार कर अनन्त मौत
पहुँची आ नव-लोक में।
अपनी आत्मा के आलोक में।
रथ की है चाल तेज
गुनगुनाता मेरा नाम
लगा रहा हवा में दौड़।
करेगा कौन उससे होड़।
राह नहीं, अगर लौटूँ भी
पहचान क्या पाओगे ?
देखोगे अगर दूर से।
हे सखा, मेरे प्रान,
मैं गा रही विदा गान।
एक दिन, पूर्ण अवकाश के समय
बसन्त का मृदु समीर
बनेगा जब श्वास तीर
किसी एक रात को अतीत की याद में
गिरी हुई कली की
व्यथा से व्यथित जब होगा मन
उस समय उस क्षण
खोज लेना तुम मुझे निज हृदय
पट पर, अतीत की स्मृति में।
भूली हुई व्यथा में
आलोकित करेगा ज्योतिमान वह
धरेगा वह रूप
भी कल्पना की मूर्ति का

होगा नहीं वह स्वप्न
होगा वह मेरा प्रेम, होगी वह मेरी याद
वही तो प्यार की पुकार है ।
सौंप आयी हूँ तुम्हें आज मैं
सोच जिसे मैं अर्घ्य ।
इन बदलती-राहों पर, जाती हूँ मैं चली
है काल की यह यात्रा ।
विधि ने लिखी जो मात्रा ।
हे सखा, मेरे प्रान ।
मैं गा रही विदा गान ।
अनहित तुम्हारा न हुआ है, न हो कभी
नश्वर मेरी यह देह
है पंच तत्व का गेह
सुधामय है जो आत्मा
उसमें बसता है सदा परमात्मा
उसकी करो पूजा आरती
कलुषित न होगा मेरे स्पर्श से;
तृष्णा भरी पुकार से
प्यार के दुलार से
कभी न होगा मलिन एक भी पत्र-फूल
पूजन के थाल में
चाहे किसी काल में ।
अपने मन की मौज में
तुमने थाल सजाया
वाणी का लिया सहारा,
उसको मलिन मैं
करूँगी कभी नहीं
मिला कर अपने अश्रु कण ।

मेरी याद मेरी बात
बनेगा तेरा सहारा
उनसे संजो सकोगे कविता के फूल
जगते होने पर भी जाओगे खुद को भूल
हे सखा, मेरे प्रान,
मैं गा रही विदा गान ।
किंचित भी करना न शोक तुम,
मेरे लिये सकल सृष्टि एक है ।
मेरा पात्र है भरा
अभी शून्य से अवशेष है
शून्य को भरूँ सदा, यही तो मेरा काम है ।
मेरी यह स्मृति
कर न सके जिसको विस्मृत
मुझे करेगा वही धन्य,
वही तो मेरा होगा अनन्य ।

लायेगा जो शुक्ल पक्ष से
रजनी गन्धा का फूल
और सजायेगा जो उसे
अपने पूजन के थाल में;

अन्धियारी घोर रात में
और बात की बात में ।

देखेगा जो मुझे
सदैव असीम क्षमा-युक्त
बुराई भलाई को भूल

उसको ही तो मैं
चाहूँगी खुद ही देना
अपनी बलि का फूल ।

तुम्हें था मैंने दिया
अधिकार उसका कभी
वह है तुम्हारे पास ही।

हे मीत, यहाँ है
अब रोम-रोम का दान,
करुणा भरे क्षणों में करना है मुझको
अपने ही कर से
अपने विष का पान।

ओ मेरे अनुपम,
मेरे समृद्धि—वान्
तुमको जो दिया था,
वह तुम्हारा ही था दान।

मुझसे लिया जितना
दिया तुमने मुझे उतना।
हे सखा, मेरे प्रान
मैं गा रही विदा गान।

—वन्यों